तिनका-तिनका सपने
(डायरी)

गोपाल शर्मा 'सहर'

हंसा प्रकाशन
जयपुर

तिनका-तिनका सपने

उनको

जिनकी सासे

मेरी इन सांसो से

आकर जुड़ती है।

मेरी डायरी की रचना-प्रक्रिया

उदयपुर शहर का उदयपाल।

दो दिसम्बर 1990 की ठिठुरती रात।

हम सब दास्त और दोस्ती की गरमी।

एक दिन पूर्व ही मेरी नौकरी कपड़वज कॉलेज (गुज॰) म लगी। वहीं जा रहा था मै उदयपुर को छोड़कर। सारे दोस्त मुझे विदा करने आए थे। नौ बजे वाली बस रात को एक बजे आई। एक-एक कर सभी दोस्तो से मिलकर बस मे चढ़ गया। दादा, प्रभो, रमेशजी और दोस्तो का भी हृदय भर आया। मै बस मे अपनी सीट पर बैठा कितनी ही देर रोता रहा, चाहकर भी आँसू रोक नही पाया।

इससे पहले 16 अगस्त, 1981 मे मेरा गाँव छूटा। घर, मा क हाथा-लीपा आगन, आगन मे तुलसी की क्यारी, साझ ढले क्यारी मे जलता दीया, मा-पिताजी, छोटा भाई, परथु दादा (जो अब नही रहा) एक अदद दोस्त भवरसिह, खेत-खलिहान, तालाब, नदी, गाँव की मिट्टी सब कुछ पीछे छूट गया। कभी-कभार मिल-देख आऊँ तो भी क्या ? पढ़ाई करते-करते उदयपुर शहर मेरा सपना बन गया। और फिर पीछे छूट गये-शहर, दोस्ती और सपने। जैसे जीवन मे कमाई सारी पूँजी ही मुट्ठी मे से गिर पड़ी।

कपड़वज कस्बा और मै। दोनो एक-दूसरे के लिए नये-अपरिचित। मै अपने खाली-रीतेपन को भरने के लिए किराए की साइकिल लिए इधर-उधर भटकता रहता, और साझढले खाली मन-बोझ लिए लौट आता। कभी मित्रो के आए खतो से खालीपन को भरने की कोशिश करता, तो कभी किताबो मे डूबकर। पर कब तक? खतो-किताबो की बाते मै सुन-ले सकता था, पर मेरे मन की--- मन मे ही छटपटाती रहती। और धीरे-धीरे उस शहर से आने वाले खतो की सख्या भी घटती गई। कभी-कभार काई बदली एकाध बूद टपका जाती प्यास बुझन के बजाए बढ़ जाती। और कोई बतियाने वाला नही था। कपड़वज मे हितेन्द्र भाई दोस्त बने जरूर, पर कुछ अलग ही मिजाज के। दिन-रात साईकिल पर घूमते-फिरते पता नही क्या ढूढते रहते है? प्रकाश की शादी हो गई। जयन्ती भाई अब रहे ही नही। कॉलेज मे ये दोनो ही छोटे पद पर बड़े आदमी। सात-आठ वर्षीय मीलू (मोहित) से पाक दोस्ती हुई, पर धीरे-धीरे वह भी बड़ा होता शरमाने लगा। केरल से यहाँ एम॰एससी॰ करने आए टी॰के रॉय से साहित्य, समाज, राष्ट्र

विश्व की बाते जरूर होती । इन सबके बावजूद यहाँ न हेमेन्द्र दा थे, न प्रभो, न सर (अय्यर सा), न नरेन्द्र जी ही। ऐसा कोई भी तो नही था जो मेरे अन्दर के पौधे को सीचता।

मुझे नही पता, क्यो? कैसे? मैने मन की बाते कागज पर उतारना शुरु कर दी। जब कोई नही था तो कागज़ थे और थी-कलम। मै भीड़ मे अकेला अपने अकेलेपन के अनुभव कलम की जुबान से कागज के कान मे चुपके-चुपके कहता रहा कहता रहा यहाँ और कोई ऐसा कान भी नही था, जहाँ तक मेरा मुँह पहुँचता। धीरे-धीरे हुआ यह कि मन की बात को कहने-करने की ललक-मनोवृत्ति ही कलम-कागज तक सिमटकर रह गई। एक दिन कागजो पर लिखे अक्षरो को पढ़ते-पढ़ते ही मुँह से निकल गया-"ये अक्षर मेरी सासे ये कागज-कलम मेरी सासो के साक्षी, साथी भी। जिनमे सुख-क्षण कम अन्त पीड़ा ही टप्-टप् टपकती "

इस बीच मेरे प्रिय दोस्तो का आरोप था कि मै खामोश रहने लगा हूँ। कही प्रेम-प्रेम के चक्कर मे तो नही पड़ गया। जरूर रुठे हुए भाग्य से जन्मी एक चाह भी रुठ गई यह चाह दोस्ती की, प्रेम की और जीवन की चाह थी। एक-दो तीन और चार. बरस बीत गये। एक दिन कागज पर उतरी उन सासो को प्रभो(अनिल 'प्रभजन') को पढ़ने के लिए दिया। उन्होने लिखा-"तुम्हारी डायरी के पन्ने पढ़े। तुमने मुझे इसको पढ़ने का पात्र समझा। बहुत शुक्रिया। वरना कौन अपने दिल की बात करता है? डायरी ही हकीकत, बाकी बहुत कुछ आवरण है। मै तुम्हे पढ़कर अपने-आपको पढ़ने की कोशिश करने लगा। ऐसा लगता है जैसे दो आइने आमने-सामने रखे है और एक-दूसरे को देख रहे है। एक इच्छा यह भी हो रही है कि तुम्हे कहूँ कि अपनी डायरी किसी को मत पढ़ाना। आदमी और डायरी मे यही फर्क है आदमी वाचाल, डायरी बोलकर भी मूक।

और मेरी इन अक्षर सासो को जिन्हे 'राजदा' आँचल मे बाँधे सभाल रही थी, को 'डायरी' नाम मिल गया। फिर तो हुआ यह कि मै जहाँ-कही जाता 'राजदा' मेरे साथ होती।दिन तो काम-काज, भाग-दौड़ नौकरी-पेशे मे बीत जाता, पर साझ ढ़ले कमरे की, राजदा की याद आती। मै कमरे पर लौट आता, रात के कितने ही क्यो न बज जाते । रात को लेम्प तले राजदा के खुले कोरे पृष्ठ पर कलम रख देता। दोनो बहुत देर तक एक-दूसरे को खामोश देखते रहते। मै उसकी सूनी-खाली आँखो मे अपनी पीड़ा, अपने सपने उतार देता। तब वह कभी मुस्कराती-हँसती दीखती, तो कभी उदास-रोती हुई। मै तिनका-तिनका अक्षर

बीनकर लाता जिन्हे वह अपने आँचल मे जोड़ती रहती। तिनका-तिनका अक्षर शब्दो से आधे-अधूरे नीड़ की सी सूरत बनी भी है तो उसी ने सिरजी। बहती हवाओ की लपटो से तिनका-तिनका नीड़ कभी हिलने-कापने लगा, तो कभी झुलस-झुलस गया । झुलत,हिलते,कापते, झुलसे अक्षर-शब्दो की सूरत पाटण (गुज॰) के एक होटल के कमरे मे हेमेन्द्र दा ने देखी तो उनकी आँखे बरस पड़ी-

"अहसास के सैलाब मे
डूबते उतराते
बहुत बार भीच लेता हूँ पलके
कठ हो जाता है अवरुद्ध
फूटने लगती है अनायास झरनो की तरह
दिल से, आँखो से
कुछ तरल सवेदनाएँ
शब्दो की सीमाओ से परे
अपने आप से
जो कहा है तुमने
अपने आप जा सहा है तुमने
उस दर्द को छू भी नही सकता मै
देखता हूँ बस दूर से, लालच से
एक टुकड़ा कही से मिल जाए।"

वर्ष ९४ मे, मै अपने लिखे पन्नो को पलटकर अपनी जी हुई सासो से फिर रु-ब-रु हो रहा था, और क्या सूझी कि उन्हे फिर से ठीक करके खुल्ले पन्नो मे लिख दिया और शीर्षक रखा-'बिखरी सासे'। मुझे पता ही नही चला और एक दिन देखा तो 'लाड़' ने उन्हे जिल्द मे बाँधकर एक कर दिया है। तब मैने उससे कहा-'तुमने इन बिखरे पन्नो को जिल्द मे नही बाधा, मेरी बिखरी सासो को बाधा है। यूं बिखरने से जुड़ने की बात से हुआ यह कि मुझे शीर्षक बदल कर"तिनका-तिनका सपने" करना पड़ा। 'बिखरी सासो' के 'तिनका-तिनका सपने' होने की प्रक्रिया मे जुड़ने-जोड़ने वालो मे ओम,गौतम, जमान दा श्री कुन्दन माली डॉ॰ मदन सैनी, डॉ॰ मनोज कुमार सिह श्री राजाराम भादू, श्री ओमेन्द्र, अम्बरीश पाण्डा भी मेरे सहभागी रहे।

मेरे अकेलेपन के अनुभवो का जब लिख रहा था तब न मै डायरी के स्वरुप को जानता था, और न ही मानस या कोई याजना बनाकर डायरी लिखने के लिए लिख रहा था। समय, समाज घर-परिवार, अपना-पराया के बीच म रहते हुए जो अकेलापन मैंने भोगा और जो अनुभव जिस रुप म हुए उन्ह उसी रुप म उतार दिया। अनुभवो के मूल मे कोई न काई घटना अवश्य रही, पर घटना का हू-ब-हू, वर्णन न कर जहाँ घटना खत्म हुई, उसक बाद जा निचोड़-रस टपकता रहा, उसे कलम ने कागज पर उतार लिया।

हृदय की किस घड़ी की
किस धड़कन ने
तिनका-तिनका अक्षर बीनकर जोड़ने को
मुझे जोड़ा
जो भी, जैसा भी, जुड़ा-अनजुड़ा
यह मेरा सपना है-आधा-अधूरा या पूरा
इस 'तुम' ही सभालना।

– गोपाल सहर

डायरी: क्या और क्यों?

डायरी क्या है? डायरी की परिभाषा क्या है? डायरी के रुप कितने? डायरी का प्रयोजन क्या? डायरी को लेकर कई प्रश्न उठने स्वाभाविक है। वस्तुत किसी भी वस्तु को चाह वह पदार्थ या कोई साहित्यिक विधा ही क्यो न हा, किसा एक निश्चित परिभाषा मे बाधना असभव हे। फिर 'डायरी' जैसी विधा को परिभाषित करना तो और भी दुष्कर। दरअसल डायरी का स्वरूप एव प्रयोजन डायरी लिखने वाले की जीवन-शैली एव व्यवसाय ही तय करते है। कोई आने वाले कल के कार्यों को याद रखने के लिए डायरी का उपयोग करता है, कोई रोज के खर्च, यहाँ तक कि नमक-मिर्च एव सब्जी वगैरह का हिसाब रखने के लिए डायरी का इस्तेमाल करता है, किसी आन्दोलन या घटना-चक्र से जुड़ा व्यक्ति भोगे हुए यथार्थ के अनुभव से नि सृत 'कुछ' का उल्लेख डायरी मे करता है। इस दृष्टि से डायरी जहाँ एक सामान्य व्यक्ति के लिए जीवनोपयोगी वस्तु है, वही सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एव साम्कृतिक दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है। एक ओर जहाँ गाँधी, नेहरु, जयप्रकाश नारायण चद्रशेखर आदि राजनेताओ की डायरियाँ मिलती है वही दूसरी ओर साहित्यकारो, कलाकारो की डायरियाँ भी मिलती है। साहित्यिक डायरी कुछ अलग किस्म की होती है। यह साहित्यिक डायरी दो तरह की हो सकती है। प्रथम जिसमे सर्जक अपने सर्जन से जुड़े घटना-तथ्यो को सग्रहित करता रहता है, या कोई एक रचना विशेष को लेकर किए-गय चिन्तन-मनन के विचारो को नोट्स रूप मे लिखता जाता है। ऐसी डायरी रचना के लिए विशेषत कहानी, उपन्यास, सस्मरण, रिपोर्ताज आत्मकथा एव जीवनी के लिए Raw Material का काम करती है, रचना का एक खाका तैयार करती है। द्वितीय जिसमे रचनाकार, कलाकार या कोई भी सवेदनशील हृदय जीवन मे भोगे हुए यथार्थ अनुभव के निचोड़ रस को सग्रहित करता है, और वह रस खट्टा-मीठा, कड़ुआ कैसा भी हो सकता है।

रोज डायरी लिखना एक आदर्श हो सकता है, परन्तु एक सर्जक-कलाकार के लिए रोज लिखना न सभव है, न उपादेय ही। रोज लिखने के लिए लिखी जाने वाली डायरी मे तारीख मुख्य हो जाती हे, जिसमे पूरे एक दिन मे घटित घटनाओ मे से कोई एक घटना का उल्लख करना ही होता है, और यह जरूरी नही है कि हर रोज के अनुभव तीव्र एव गूढ़ ही हो ऐसे मे डायरी सतही अनुभवो का शिकार होकर रह जाती है। अनुभव के अभिव्यक्त होने की तीव्र छटपटाहट से लिखी गई

डायरी ही साहित्य, कला एव समाज के लिए उपयोगी हो सकती है। सर्जक, कलाकार की डायरी वह डायरी है जिसम वह स्वय रहकर के भी नही रहे, क्योंकि सच्चे अर्थ का कलाकार-सर्जक स्वय के लिए जी करके भी स्वय के लिए नही जीता है। वह अपने समाज-विश्व, परिवेश को बेहतर बनाने के सपने देखता है, और उन्ह परिवेश मे ढालने-उतारने के लिए प्रयत्नशील रहता है ऐसे म उसकी छटपटाहट, उसके दर्द उसका स्वय का पैदा किया नही होता है। वह कुछ ढूएता-तलाशता समाज की घेरबन्दी को तोड़ने के लिए जूझता है, स्वय के लिए नही, समाज के लिए। और वही समाज उसका अपना न होकर दुश्मन बन जाता है। सर्जक की दुनिया समाज-परिवेश से मेल नही खाती, वह समाज की खीची हुई लकीर पर न चलकर कुछ नवसर्जन करना चाहता है। इस दरम्यान जो अनुभव-विचार शब्द-रग म कही नही ढलते, वे डायरी मे ताना-बाना बुनते रहते है। डायरी म कोई जरुरी नही है कि घटना एव विचार मे तारत्म्य हो। साहित्य की मुक्तक शैली ही यहाँ प्रयुक्त होती है। यदि कही कोई घटना, अनुभव, विचार जुड़ भी रह हो तो इसके मूल मे या तो लेखक उस परिस्थिति-परिवेश से मुक्त नही हो पाया है सिर्फ सयोग मात्र।

डायरी आरभ मे बिना प्रकाशन के उद्देश्य की साहित्यिक विधा रही। आत्मकथात्मक होने से डायरी आत्मकथा के नजदीक जरुर हो सकती है, पर आत्म-कथा नही। डायरी के दैनंदिनी, रोजनिशि वासरी अन्य पर्याय है। CASSEL'S ENCYCLOPAEDIA' OF WORLD LITERATURE मे डायरी को 'रोजबरोज की आत्मकथा' A DAY TO DAY AUTOBIOGRAPHY कहा गया है। ENCYLOPAEDIA BRITANICA मे डायरी को परिभाषित करते हुए कहा गया है-" The book in which are preserved the daily memorandums regarding enents and actions which come under the writer's personal observation or those related to him by others '

डायरी की एक और परिभाषा Modern Reference Encyclopaedia मे इस प्रकार दी गई है- "A day bv day chronicle of events usually of a personal and intimate nature kept by an individual "

इन परिभाषाओ के आधार पर देखे तो भी वही बात, जो ऊपर कही गई है कि डायरी मे लेखक स्वय के जीवन मे घटित घटनाओ एव अनुभूति क्षणो को प्रतिदिन लिखता हे उभर कर जाती है। इसके अलावा दूसरो से सुनी बातो का भी उल्लेख करता है। ऐसी घटनाएँ एव क्षण अद्‌भुत होते है। लेखक की मन स्थिति परिस्थितियो एव फुरसत के अनुरुप विशेषत सूर्यास्त के बाद मे लिखी जाने वाली

होने से दिनभर मे जो कुछ भी महत्त्व का घटित हो, अनुभव हुआ हो, उसका उल्लेख-वर्णन डायरी-लेखक करता है। डायरी कभी सूत्रात्मक-सकेतात्मक भावपरक शैली मे लिखी जाती है तो कभी विस्तृत वर्णनात्मक शैली मे। डायरी आत्म-विकास एव आत्म-निरीक्षण के लिए लिखी जाती है और वह व्यक्तिगत सदर्भों के लिए भी होती है। ईमानदारी से लिखी गई डायरी लेखक के लिए स्वच्छ आईने का काम करती है, जीवन-शैली का विश्लेषण प्रस्तुत करने वाला आलोचक हो सकती है। कभी अन्तर्मुखी व्यक्तियो के लिए डायरी सहृदय होती है, जिसमे उसकी उन्मुक्त भावाभिव्यक्ति होती है। कभी इससे भी विशेष स्वय की आकाक्षाएँ, भूले, मनोमथन, उपलब्धियाँ एव सुख-दु ख प्रकट होते है-स्वय के हृदय के गूढ़तम् भाव इसमे अभिव्यक्त होते है। ऐसी डायरी मे व्यक्ति का अन्त रुप प्रकट होता है। 'The diary of a young girl' एक ऐसे प्रकार की डायरी है, जिसमे Anne Frank नाम की तेरह वर्षीय किशोरी स्वय के जन्म-दिन पर भेट-रुप मे मिली डायरी को अपनी सखी बना लेती है। और उसमे अपने मनोभावो को व्यक्त करती है। इसमे तरुणता की देहरी पर कदम रखती किशोरी के शारीरिक एव मानसिक परिवर्तनो का चित्रण जीवन्त बन उठा है।

डायरी मे अतीत एव वर्तमान तो होता है, परन्तु भावी योजनाओ का खाका भी तैयार होता है। क्या हुआ? क्या कर रहा है? अब किस दिशा मे जाना है? की योजनाएँ उसमे अभिव्यक्त होती है। काका कालेलकर डायरी एव पत्र का साहित्य मे उच्च स्थान बताते हुए कहते है " पत्र एव डायरी, ये ही उच्चकोटि का साहित्य है। दूसरो को जो कहने योग्य हो, वही हम पत्र मे लिखते है और स्वय के जीवन मे से जो उल्लेख करने योग्ये हो अर्थात् हो महत्त्व का हो, वही डायरी के पन्नो पर चढ़ता है। ऐसी उत्कृष्ट छलनी मे से छना हुआ लेखन-साहित्य का दर्जा प्राप्त करता है, इसमे आश्चर्य क्या? मै तो कहूँगा-'पत्रमूल वासरीमूल च साहित्यम्' दोनो म वास्तविकता का सबसे बड़ा आधार होता है "

डायरी एव आत्मकथा मे अन्तर है। आत्मकथा का लेखन जीवन के किसी एक क्षण मे शुरु होता है, जबकि डायरी रोज-रोज लिखी जाती है। डायरी मे घटनाओ का सामान्यत तत्क्षण उल्लेख होता है, जिससे वह लेखक की उस क्षण की मन स्थिति का चित्र प्रस्तुत करती है। कोई कार्य लेखक किस उद्देश्य से प्रेरित होकर करता है अथवा किसी घटना का उसके मन पर क्या असर हुआ। इस दृष्टि से लेखक की बदलती मन स्थिति का मनौवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण किया जा सकता है। लेखक की तत्कालीन क्रिया-प्रतिक्रिया का उल्लेख होने से प्राय इसमे कोई मिलावट नही होती है। डायरी मे लेखक की सवेदना 'अनाघ्रात पुष्प'

सदृश पाक होती है अर्थात् इसमे सवदनशीलता का कौमार्य भग नही हो पाता है, जबकि आत्मकथा इस तत्कालीनता को खो देती है, क्योकि वह जीवन के किसी एक पड़ाव पर किसी एक क्षण म लिखना शुरु होती है।

डायरी लेखक क लिए प्रत्यक दिन महत्त्वपूर्ण होता है। एक ही दिन की विविध प्रकार की भाव-स्थितियाँ देखन को मिलती है। भावो-विचारो का पुनरावर्तन भी होता है जिससे पाठक क लिए कई बार अरुचिकर भी हो जाती है। डायरी म लेखक के जीवन के अधूरे पहलू की छाया-बारम्बार दिखाई पड़ती है। डायरी म कभी-कभी परस्पर विरोधी-भाव-विचार भी आते है। कभी तो डायरी का प्रत्येक पृष्ठ पूर्ववर्ती को मिथ्या सिद्ध करता है, उल्लेखित विचारो का खण्डन करता है, जबकि आत्मकथा मे पुनरावर्तन के अभाव मे क्रमबद्धता के कारण भाव-एकता देखने को मिलती है।

डायरी के पृष्ठो मे बिखरी हुई स्थूल-सूक्ष्म घटनाओ मे लेखक की छवि खण्डो मे प्रकट होती है। भाव-विचार या सकेत से पाठक को स्वय लेखक का अन्त बाह्य स्केच तैयार करना पड़ता है, जबकि आत्मकथा लेखक स्वय स्पष्ट रूप से समग्र जीवन का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

अन्तत , डायरी एक अर्थ-बहुल साहित्य-विधा है। डायरी ही एक ऐसी साहित्य विधा है कि प्रत्येक सर्जक को डायरी की अलग-अलग साहित्य-विभावना या परिभाषा करनी पड़े। इसी बात को यू भी कहा जा सकता है कि डायरी का साहित्य-स्वरूप ही सर्जक को पूरी तरह स्वतत्रता प्रदान करता है कि वह स्वरूप के जड़ दायरे से बद्ध नही होता। सर्जक की प्रतिभा के मुक्त रूप मे अभिव्यक्त होने की साहित्य की अन्य विधाओ को अपेक्षा डायरी मे अधिक एव विशेष सभावना रहती है।

इतिहास इसलिए होता है कि भूतकाल मे हुई गलतियो का पुनरावर्तन न हो। इतिहास हकीकतो का दस्तावेज है, वही डायरी अतीत के महासागर म डुबकी लगाकर जीए हुए को फिर से जीने का अवसर प्रदान करती है और आनद के भव्य प्रदेश मे ले जाती है। डोरोथी वर्ड्सवर्थ की एक ऐसी ही डायरी है। विलियम वर्ड्सवर्थ समुएल टेलर कोलरिज एव वर्डसवर्थ की बहिन डोरोथी वर्ड्सवर्थ तीनो कई दिनो तक दूर-दूर प्रकृति के सुरम्य प्रदेशो मे पैदल घूमा करते थे। इस दौरान देखी घटनाओ हुए अनुभवो एव आपस की बातो-विचारो को डोरोथी डायरी मे लिखा करती थी। बाद मे विलियम वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति के उन्ही क्षणो-अनुभवो के आनद को डोरोथी की डायरी मे डूबकर जीया और यहाँ तक कि डायरी के आधार पर कई कविताएँ लिखी। उन्ही मे से 'डेफोडिल्स'

(Deffodils) उनकी एक सुप्रसिद्ध कविता है। आने वाले कल के सुन्दर-सलौने सपने, योजनाएँ डायरी मे ही जन्म लेते है। डायरी का प्रयोजन भी साहित्य की अन्य विधाओ की ही तरह सपूर्ण कलात्मक, जीवन परक एव सौन्दर्य बोध से युक्त होता है।

डायरी से सर्जक के व्यक्तित्व का, चरित्र का एव सवदनमूलक जीवन का निर्माण होता है एव लेखन-दरम्यान सर्जक का जगत-जीवन के प्रति एव उसके अन्त सवदन-विश्व के प्रति एक दृष्टि बिन्दु बनता है। डायरी सर्जक के स्थूल जीवन, बाह्य हकीकत घटनाओ की आधार-भूमि पर लिखी जाती है, पर उसमे उद्घाटित होता है-सर्जक का अन्त विश्व। किसी मनोवैज्ञानिक ने ठीक ही कहा है कि व्यक्ति स्वय के आन्तरिक विश्व के सहस्रांश को भी नही देख सकता, परन्तु यदि सर्जक परिवेशगत घटनाओ के बीच स्वय को रखकर, चिन्तन-मनन से उद्भूत विचारो को डायरी मे लिखता है तो वह उसके अज्ञात मन क'अदृश्य-विश्व' के दर्शन कर सकता है।

'डायरी' स्वये के साथ स्वयं के द्वारा की गई स्वय की बात है। डायरी हृदय की वाणी है। डायरी विश्रंम कथा है-कोई सुन नही ले, ऐसी। स्थूल हकीकत, घटनाओ एव बाह्य व्यक्तित्व से भरपूर प्रवृत्तियों का दिन बिताकर जब रात्रि मे सोये हुए सर्जक के हृदय मे डायरी जागती है, उस समय उसके साथ कोई नही बोलता, डायरी बोलती है, जीवन की ऋचाएँ चैतन्य-प्रवाह का शब्द-रूप, प्रदान करती है, सवेदना भाव-रस की धाराएँ बनकर बहती है, वही डायरी होती है।

गोपाल सहर

अनुक्रम

सांसो की लड़ी	१
ये सिर्फ अक्षर नही है	२
चाँद-सूरज की साजिश	३
एक ख़त इमरोज को	४
दुपहर म	५
यह भी क्या जिन्दगी है?	६
पानी प्यासा है	७
उड़ा फिर रहा है मन	८
कलम फिर पिघल गई	९
वह चाहती क्या है?	१०
दोस्ती म झगड़ा	११
मुहब्बत की सजा	१२
शोषण के खिलाफ	१३
परछाईं और अतीत	१४
कहाँ ठहरती है सुबह जिन्दगी म	१५
सब कुछ ठहर गया एक पल	१६
रेगिस्तान ही रेगिस्तान	१७
सांसो का सिलसिला	१८
मै एक बबूल हूँ	१९
कहानी के किरदार	२०
रात के ख़्वाब	२१
आँख मिचौली	२२
खुद की हुई राख	२३
मेरा घर	२४
पत्ते ही तो है	२५
मनका मनका फेर	२६-२७
भाई के मायने	२८
कभी मुझे भी तस्वीर सा टांग देना	२९
कवि का घर	३०
बड़ी उलझन है घर की	३१

कुछ चुभने लगा-कील की तरह ३२
कुत्ता और उसका मालिक ३३
एक बात गालिब से ३४
शब्द ३५
जोड़-बाकी ३६
फूल होकर बेवक्त मारा गया ३७
दुनिया की सबसे बड़ी भूल ३८-३९
चाहा तो बिछा लिया---- चाहा तो समेट लिया ४०
सांसो मे सांस देने के लिए ४१-४२
खुदा तुम्हारी दुआएँ कुबूल करे ४३
भरी दुपहर--- वर्ष फिसल रहा है--- ४४
क्या नाम दूं इस जिन्दगी को? ४५
बिन द्वार की दिशा ४६
घर को क्या नाम दोगे ४७
परवाज ख्वाब और जमी ४८
अन्दर का सच आँखे कैसे देखें? ४९
जड़े होना जरूरी है ५०
भूखे रहने की दुआएँ ५१
आओ! मेरे अन्दर आओ ५२-५३
जिन्दगी दर्द क्यो हुई? ५४
चीनू भैया को एक खत ५५
कोई उम्मीद रही होगी ५६
जिन्दगी की हमशक्ल ५७
एक लड़की का विश्वास--- एक मर्द का विश्वास--- ५८
कोई छत दिखाई नही देती ५९
और सब मन के गढ़े--- झूठे रिश्ते--- ६०
बदला हुआ शहर ६१
बैठना समय से पहल बूढा होना हे ६२
आईने का कोई आईना नही ६३
सब किवाड़ो पर कीले लगी है ६४
चेहरे कोई पहचान नही बनाते ६५
शाख स टूटा हुआ पत्ता ६६

मां नही बदलती ६७
समझ के नाम की गलतफहमियाँ ६८
जिस्मानी रिश्ते के आगे ६९
न वो दिल रहे, न जमी, न बदलियाँ ७०
कोई है द्वार पर ७१
कड़े कब कंगन हुए? ७२
कागज और कान मे फर्क ७३
कौन बसायेगी मेरा घर? ७४
शादी के मायने? ७५
उघाड़ लो, उधर रख दो, ओढ़ी हुई चादर ७६
तिनका-तिनका सपने ७७-७८
उदासी ने कई गाठे लगा ली है ७९
सांझ तो बेघर है ८०
कुण थनै व्हालौ करे? ८१
सच और झूठ ८२
यह कौनसी सड़क है? ८३
समझदार की समझ से परे ८४
राखी-डोरा के मायने ८५
जड़ मूर्तियाँ और चेतन लोग ८६
नपुंसक होती है अफवाहे ८७
इकतीस वर्ष पूरे होने पर ८८
व्यापारी की भाषा से अलग भाषा नही थी ८९
आधा-आधा बाँटकर खा लेते ९०
मै भेड़ नही हुआ ९१
झील और जिन्दगी ९२
हवाओ की औलाद है लहरे ९३
परथु दादा---- ९४
'इन्तजार एक सुबह का'- एक खत उसका ९५
लाड़ की लाड़ली ९६
फटी हुई आस्तीन ९७
कुछ मेरी कुछ उसकी बाते ९८

सांसो की लड़ी

पता नहीं, कब मैंने सपनो को सासो की लड़ी मे पिरोकर पहन लिया। फिर, कोई हवा ऐसी चली कि लड़ी ही टूट गई।

सासे बिखर गई
सपने चूर चूर हो गये
तब से मै उन्हे बीन बीनकर अक्षर-अक्षर जोड़ता रहा
पर आज तलक नही जुड़े।
अब तुम ही उन्हे जोड़कर पढ़ लेना।

ये सिर्फ अक्षर नहीं है

यह राज़दा मेरी बिखरी हुई सासो को सहज कर रखने वाली मेरी वो सब कुछ है, जो किसी इसान की जिन्दगी मे 'कोई एक' सब कुछ हो जाती है। राह चलते ज़िन्दगी ने कई ठोकरे खाई, सभलते सभली।

जो कोई नही जानता, यह जानती है। जो दर्द अक्षरो मे नही ढ़ला, उसे भी यह पहचानती है।

राज़दा यू ही नही मिली। राह पर चले जा रहा था। थककर चूर हो रहा था, सासे बिखर रही थी, पर नजर को कोई तलाश थी। चले जा रहा था----- चले जा रहा था, एकाएक यह मिल गई। इसकी आँखो से भी एक-एक करके सपने टूट रहे थे। मैंने उन टूटते सपनो को सीने मे उतार लिया और इसने मेरी बिखरी सासो को बीनकर अपने पल्लू मे बाँध लिया।

ये सिर्फ अक्षर नही है, इसके पल्लू मे बँधी हुई मेरी सासे है, जिन्हे जोड़ने मे यह रात-दिन ही भूल गई। दुनिया ने मुझे भला-बुरा कहा। इसने कभी कुछ नही कहा। यह तो कहती है- मै तुम्हारी राज़दा हूँ और तुम मेरे राज़। मै जिस्म हूँ, तुम सासे। एक के बिन दूसरा कैसे रहे?

राज़दा कभी सुबह हुई, तो कभी शाम कभी दुपहर बनकर ढली तो कभी रात। कभी जमी हुई तो कभी बदली। कई सूरतो मे ढलकर मेरी उम्मीद बनी रही। कभी यह रूठ गई तो मैने मना लिया, कभी मै रूठ गया तो इसने हँसा दिया। रूठने-मनाने का यह सिलसिला चलता रहा---चलता रहा---फिर न सासे थकी न जिस्म ही।

चाँद-सूरज की साज़िश

सितारो!

चाँद - सूरज की साज़िश ही है कि तुम एक - एक करके टूटते रहे। तुम्हारी हर सुबह रात होती रही। कोई क्यो पूछेगा तुम्हे भला? ब्रह्माण्ड मे चाँद - सूरज की बाते होती रही।

अब तुम्हे एक-एककर टूटना नही है
टिके रहना है। इधर-उधर, बिखरे-बिखरे, झिलमिलाते तुम सबको एक होना है चाँद-सूरज के खिलाफ।

१३ २ ९२ कपडवंज

एक खत इमरोज को

इमरोज साहब!
कितने खुशनसीब ठहरे तुम।
कि तुम्हे 'अमृता' मिली।
मै तरस गया
इक बूद पानी को!

३ ३ ९२ कपडवंज

दुपहर में

दुपहर मे
नदी का बदन सुलग रहा है।
उसकी सारी बादल को पाने हवा मे
छटपटा रही है।
बादल झुक गया
नदी सिमट रही है और
रात मुट्ठी मे से
फिसल रही है रेत की तरह

८ ३ ९२ कपडवंज

यह भी क्या जिन्दगी है?

देर रात ११ ३० बजे कमरे पर लौटा हूँ। आज ही नही, इससे पहले भी कई बार देर रात को लौटता रहा हूँ, पर आज जब कमरे का दरवाजा खोला और ज्योंहि कमरे मे कदम रखा तो कुछ अजीब सा लगा। बत्ती जलाई तो आँखो के आगे अँधेरा छा गया। कुछ समझ मे नही आया। फिर एकाएक मुँह से निकल गया- "कोई कहने वाला नही है कि इतनी देर रात कहाँ रहे?"

१२ ३ ९२ कपड़वंज

पानी प्यासा है

पानी प्यासा है। पानी पानी को ढूंढ रहा है। आँखे मिलती है- रीती - रीती। दूर -दूर जाकर नज़र लौट आती है। रेत भी कही नही दीख रही है, वरन् मृग-मरीचिका मे ही गुज़र जाते कुछ पल।

१२ ३ ९२ कपड़वंज

उड़ा फिर रहा है मन

कुछ भी करने को जी नही कर रहा है। मन उड़ा-उड़ा फिर रहा है। उसे बैठने को कही कोई रूख नही है। घूम-फिर कर मुझ तक लौट आता है।
साझ ढल गई है। रात आगन मे उतर आई है। आगन मे कुर्सी मे बैठा हूँ। पछी बना *मन दूर उड़ रहा है। पिछले कुछ दिनो से एक बेचैनी मुझे खाए जा रही है। बहुत* काम पड़े है, पर कुछ भी करने को जी नही कर रहा है।
अन्दर ही अन्दर से कुछ टूटता जा रहा हूँ। मित्रो के पत्र टेबल पर पड़े है। अकेलेपन का साथ है।

२१ ३ ९२ कपड़वंज

कलम फिर पिघल गई

एक साथ सात चिट्ठियाँ मिली। एक-एक कर लिखावट से पहचानने लगा कि किस-किस की चिट्ठी है। एकाएक रूक गया। विश्वास न हुआ। अन्दर ही अन्दर कोई मुस्कराने लगा। चिट्ठी खोली और पढ़ने लगा। "तुम्हारी किताब प्रकाशित हो गई, इसके लिए बहुत-बहुत मुबारक। मुझे भी एक प्रति भेजते तो अच्छा होता, खैर! बहुत ही खुशी हुई कि आपका लिखा हुआ अब सब पढ़ सकेगे। तुम भी यही चाहते थे। अब तो तुमने सब कुछ पा लिया। आगे क्या इरादा है?----।" मै अतीत मे उतर गया। जहाँ तक मुझे याद है, 22 अक्टूबर 1987 को मुझे खत मिला, जिसमे लिखा था-" बहुत चाहा कि तुम्हे पत्र न लिखूं। पर अपने आपको रोक नही पाई। अब कभी पत्र लिखूँगी या नही, कह नही सकती।" ये शब्द लिखने वाले दिल की कलम फिर पिघल गई। मै सोचता हूँ - इसमे कही न कही ईमान ही कारण है। वर्षों से रूठा चाँद आज फिर मेरे आगन मे निकल आया। मुझे दु ख सिर्फ इस बात का था कि चाँद मुझसे रूठा तो बस क्यो रूठा? मेरे चाँद। तुम चमकते रहना मेरी रात कट जाएगी।

२७ ३ ९२ कपड़वंज

वह चाहती क्या है?

कई घटनाओ ने मुझे बच्चो की तरह घेर लिया है। हर एक उछल - उछलकर मेरी अगुली को पकड़ना चाह रही है। मै देख रहा हूँ, उनमे से एक ने उछलकर मेरी अगुली को पकड़ लिया है और मेरी कलाई को दोनो हाथो मे कस लिया है। वह ऊपर चढ़कर मेरे कंधे पर बैठ गई है और रुक-रुककर मेरे बालो को खीच रही है। वह चाहती क्या है? बोलकर माग क्यो नही लेती है? मै देख रहा हूँ, वह अक्षर-अक्षर शब्द मे ढलकर आकार ले रही है, और बोलकर बाते कर रही है।

२ ४ ९२ कपड़वंज

दोस्ती में झगड़ा

किताब, कलम और सिगरेट तीनो तन्हाई के लिए आपस मे झगड़ पड़े है। तन्हाई खड़े-खड़े तीनो के झगड़े को देखती रही और हैरान हो गई कि दोस्ती भी क्या चीज है? तन्हाई ने तीनो को सीने से लगा लिया।

४ ४ ९२ कपड़वंज

मुहब्बत की सज़ा

मेरी याद छाया बनकर तुम्हारा पीछा करेगी। मेरा अहसास तुम पानी, हवा और तेज मे महसूस करोगे।

शून्य मे हर कही उभरती कोई आकृति मे तुम्हे मै ही मै नज़र आऊँगा। जब मै पूर्णरूप से मिट्टी बन चुका हूँगा। तब तुम मिट्टी की गध मे मेरी हर एक सास का अक्षर - अक्षर सूघोगे।

भरी दुपहर मे मेरी मुहब्बत की सासे आवारा बन भटकती रही, तड़फती रही----- पर, होठो ने पनाह नही दी। मेरी हर एक सास को खुद मे धड़कते महसूस करोगे। यही सज़ा है तुम्हारे लिए।

। ४ ४ ९२ कपड़वंज

शोषण के खिलाफ

मै कलम बन जाऊं
मेरा लहू स्याही बनकर अक्षर की रग-रग मे दौड़े।
और उनकी सासो की आत्मा से
फूटी चिनगारियाँ
शब्द बनकर सुलग उठे
कागज़ की धरती पर।

५ ४ ९२ कपड़वंज

परछाई और अतीत

सामने डायरी--- और हाथ मे कलम है। बहुत देर तक बैठा कुछ सोचता रहा आँखे भर आई---- मेरी किश्ती को मै खुद दरिया मे डूबोने ले जा रहा हूँ। मैं मुड़कर देखा - किनारे पर खड़ा कोई मुझे हाथ के इशारे से बुला रहा है। मै लौ आता हूँ। देखता हूँ, वहाँ कोई नही है।----- शायद मेरी परछाई ही रही होगी मैने अपने आँसू उसके कदमा मे चढ़ा दिए। मेरे आँसू के राज़ को वह पहचान ग और उन्हे कदमा मे से उठाकर खुद के आँचल मे बाँध लिए।
फिर उसने एक राह की ओर इशारा करके कहा- " इस राह पर चले जाओ।" उर राह से सूरज की रोशनी आ रही थी। मैने कहा-"मुझे उजाले की राह नहीं दिखाओ। उजाले कभी भी मेरे नही हुए। जिस उजाले की राह तुम दिखा रही हो मै उस राह से गुजरा हूँ। उजाला मेरा अतीत है और वह कोई वस्त्र नही है कि उतार कर फेक दू। वह तो साप बनकर फूफकारे मारता है।"

५ ४ ९२ कपड़वंज

कहाँ ठहरती है सुबह जिन्दगी मे।

रात का अन्तिम पहर है। दीए मे से तेल की तरह अँधेरा चुक रहा है। सुबह की राह देख रहा हूँ। पर, यह क्या? सुबह ने दस्तक दी। देहरी तक आई भी। पर, अपनी मुस्कराहट की एक झलक देकर कहने लगी- "तुम लौटोगे तब तक मै जा चुकी हूँगी।"

"सच है, कहाँ ठहरती है सुबह ज़िन्दगी मे।"

अँधेरा दौड़कर मुझसे लिपट गया।

पहले भी मैने ज़िन्दगी मे एक बार ऐसी ही सुबह देखी थी। बिल्कुल तुम्हारी ही तरह वह भी मुस्कराई। थोड़ी दूर तक साथ भी चली। फिर एकाएक कही खो गई। मैने उसे बहुत आवाजे दी। पर, वह नही लौटी। तब अँधेरा मुझसे लिपट कर रो पड़ा था। मुझसे कहने लगा- तुम मुझसे दूर भागना चाहते हो न? पर बहुत प्रयास करने पर भी तुम मुझसे दूर नही भाग सकोगे। जिस सुबह की तुम राह देख रहे हो वह हर बार मुस्कराकर खो जाएगी।

"क्या तुम भी वही सुबह हो?" मैने पूछा।

सहमी सी थोड़ी देर वह खड़ी रही। मैने फिर पूछा-" तुम कुछ बोल क्यो नही रही हो?"

मैने देखा- उसकी आँखो से गिरी बूदे पत्तो पर चमकती लुढक रही है। लुढकती-सूखती बूंदे मुझसे कह रही है- हम सूरज की हो चुकी है।

६ ४ ९२ कपड़वंज

सब कुछ ठहर गया - एक पल

बहुत दिनो के बाद उदास ज़मी को मुस्कराते-हँसते देखा। उसने बाँहे फैलाकर बादल को अपने सीने से लगा लिया। बादल ने उसे चूम लिया।

सब कुछ ठहर गया - एक पल।

ज़मी का स्पर्श पाकर बादल ने उसके अन्दर एक आग को महसूस किया। लगा कोई बर्फ का टुकड़ा है जो पिघलकर आग मे तब्दील होता जा रहा है। बादल के अन्दर उठती हुई आग को उसकी धड़कन के अहसास से ज़मी पहचान गई। ज़मी ने कहा-"मुझे बहकने के लिए मजबूर नही करो।"

बादल बहकता रहा, बरसने को तड़फता रहा पर ज़मी ने सिमट कर करवट बदल ली। ज़मी ने कहा- "बादल के टुकड़े मात्र हो। तुम्हारा क्या भरोसा कितनी देर ठहरो यहाँ? पता नही कोई हवा का झोका तुम्हे कहाँ ले चला जाए? फिर तुम मे पानी भी कितना होगा? थोड़ी देर बरसकर, मेरी प्यास जगाकर मुझे तड़पते छोड़कर आगे चल दो। मेरे अन्दर मेरी वेदना सोई हुई है, उसे मत जगाओ।"

९ ४ ९२ कपड़वंज

रेगिस्तान ही रेगिस्तान

कल, मैने अपने अन्दर एक आग का अनुभव किया। फिर वह आग बहुत देर तक सताती रही। यू तो यह आग कुदरत की बख्शीश है। पर, इस आग का अहसास यकायक क्यो हुआ?
क्या यह आग मेरे अन्दर यू ही सुलगती रहेगी और मै जलता रहूँगा? बाहर-अन्दर की आग मे कितना अन्तर है? अन्दर की आग जब जलाती है तो बाहर की आग की तरह राख नही करती। आनद का झरना बन जाती है। पीड़ा है तो आनद है और पीड़ा मे पवित्रता। मै कितना प्यासा हूँ कितने अर्सो का प्यासा हूँ। कोई होठ नही---कोई जुल्फ का साया नही--- । मरुस्थल ही मरुस्थल---

९ ४ ९२ कपड़वंज

सासो का सिलसिला

कल रात से ही कुछ लिखने की तलब हो रही है। मेरे पास कुछ चिट्ठियाँ पड़ी है, उन्हे पढ़ गया ओर कलम का हाथ मे पकड़े बहुत देर तक सोचता रहा। पता नहा, कहाँ खोया रहा। जिन्दगी की सास - सास के अहसास को पकड़ने की कोशिश करता रहा। हर एक सास को मैने अन्दर उतारा, पर नही ठहरी। कुछ ही पलो मे बाहर निकल आई। सासे भी मुक्ति चाहती है, पर सासो का सिलसिला नही टूटता। सासो का सिल-सिला ही तो जिन्दगी है।----- आगन मे कपड़े सुखाने की डोरी पर चिड़िया ने तिनका-तिनका चुनकर नीड़ बनाया है और उसमे सपने सजोए है।

२३ ४ ९२ उदयपुर

मै एक बबूल हूँ

तपती रेत, धूल भरी आँधियाँ है। मै बबूल सा खड़ा आकाश मे निहार रहा हूँ। मुझ पर कुछ बचे-खुचे पत्ते-फूल थे। उन्हे भी हवा-तेज लू झाड़कर ले गई। अब इर्द-गिर्द काँटे बिछे है।

तुम आओ तो जरा सभलकर कदम रखना।

२३ ५ ९२ लाडनूं

कहानी के किरदार

जब भी कोई कहानी लिखना शुरू कर देता हूँ और कभी बीच मे थककर लेट जाता हूँ तो लेटकर के भी सो नही पाता। कहानी के किरदार मेरे पीछे लगे रहते है। जब तक उनकी कहानी लिखकर पूरी नही कर देता हूँ, वे मुझे चैन नही लेने देते। यदि मै उनके साथ न्याय नही कर पाता तो वे दिन–महिनो तक मेरा पीछा नही छोड़ते।

२ ७ ९२ कपड़वंज

रात के ख्वाब

रात बूद-बूद आँसुओ से ख्वाब बुनती है। पत्तो पर सवारती है और सोचती है कि सुबह होते देखूँगी कि कितने रगो मे कितने सुनहरे ख्वाब बुने है मैंने।
पर कुछ ख्वाब तो सुबह होने से पहले ही हवा से टूटकर बिखर जाते है, और बचे हुए ख्वाबो को सुबह होते ही सूरज बीन लेता है।

२८ ७ ९२ कपड़वंज

आँख - मिचौली

एक ओर सूरज छिप रहा है, दूसरी ओर चाँद निकल रहा है। साझ बीच मे उदास खड़ी है। उसकी आँखे नम है। वह कभी ढलते सूरज की ओर देखती है तो कभी निकलते चाँद की ओर। आखिर कितनी देर तक देख पाएगी?
कैसी उलझन है?
न वह सूरज की है, न चाँद की ही। सूरज ने किरणे समेट ली तो उधर चाँद मुस्कराया। पर कुछ ही पलो मे सांझ को अँधेरे ने घेर लिया। उसके सिर पर घने-काले बादल छा गये। चाँद बादलो को काटता-छाटता सफर तय कर रहा है। यह जरूरी नही हे जानना कि यहाँ कौन चाँद है? कौन सूरज है? कौन साझ? और कौन उषा? पर यह आँख मिचौली ही जीवन का सच है। फिर भी हम नही समझते कि यहाँ कोई किसी को खुद का बनाकर नही रख सकता है। कुछ पलो का मिलन---- अँधेरी रात और पूरी उम्र की भटकन।

९ ९ ९२ कपड़वंज

खुद की हुई राख

एक अजीब घटना घटी है
सिगरेट और मै, दोनो बहुत देर तक
एक-दूसरे को देखते रहे है।
मुझे लगा-" सिगरेट जल रही है।"
सिगरेट को लगा-" मै जल रहा हूँ।"
पता नही कौन जल रहा है?
मै खुद ही सिगरेट बन गया हूँ
और खुद को जलाकर पी रहा हूँ।
अपनी ही राख को देख रहा हूँ।
मेरे माथे के ऊपर उठा धुआँ
ठहाके से हँसकर कह रहा है-
" मै नही तू हवा मे बिखरकर
अस्तित्व खो रहा है।"

२७ १२ ९२ कपड़वंज

मेरा घर

आज मैने अपना घर बनाया है
आस्था और विश्वास से गहरे तक नीव भरी है
दिशाओ की दीवारे खड़ी की है
चाँद-सूरज के रोशनदान लगाये है
आसमा की छत डाली है
ज़मी का आगन बिछाया है
मुहब्बत के रग से लीप-पोतकर उसे सजाया है
खुद की सासे डालकर धड़कन दी है
अब चाहे कितनी ही तेज हवाएँ चले
चाहे कितने ही जोर से तूफा आए
चाहे बादल कड़ककर टूटे
मेरा दावा है
मेरा घर नही ढहेगा।

२८ १२ ९२ कपड़वंज

पत्ते ही तो है

अपने ही बोये बीजो से बड़े हुए विश्वास के वृक्ष के पत्ते पीले होकर बे-मौसम एक-एक कर गिरते जा रहे है------। पत्ते ही तो है। समाज की राजनीति की हवा के आगे पत्तो की, पीले हुए पत्ता की क्या बिसात? रिश्तेदार दर्द को सुलाने नही, जगाने के लिए आए थे। बहुत कुछ घटा----- सब कुछ समय की छाती मे दबाए रख रहा हूँ। जब टूट चुका हूँगा खुद से हारने लगूँगा। तब तुझे जरूर कहूँगा। तुम ही एकमात्र मेरी हो। तुम सिर्फ कागज़ के पन्ने ही नही हो। मेरा आईना हो, मेरी हमजुबा हो मेरी हमसफर हो। तुम जो हो और कोई नही।

१७ ३ ९३ कपड़वज

मन का मनका फेर

मुझे उन लोगो से कुछ नही कहना है जो इसानियत को खोकर हैवान हो गये है। पर कही कुछ दिलो मे वची-खुची नमी के नाम यह पैगाम पहुँच।

दुनिया के हालात पर आज दिल मे कई खयाल उतर आए है। आँखो मे आँसू उतर आए है। मेरे देश को यह क्या हो गया है? मेरी दुनिया को यह क्या हो गया है? मै यहाँ क्यो आया? जानता हूँ तेरे सिवा यह सारी दुनिया चिलमिलाती धूप की रेत है, आर उसमे से उठती तेज लपट। पाँवो मे छाले फूटे गये है, बदन झुलस गया हे। कही कोई आगोश नही है, जहाँ कुछ लम्हे चैन की नीद सो सकूं। बस, चल पड़ता हूँ एक जगह से दूसरी जगह के लिए, मगर हर दूसरी जगह पहुँचने के बाद भी दिल को काई सुकून नही मिलता, फिर कोई दूसरी जगह की ओर कदम बढ़ने को हो जाते है।

सच, मौत के आने से पहले तुझे मेरी पूरी कहानी कह देना चाहता हूँ। वरन् अनकही ही रह जाएगी और मेरे ज़िस्म से, मेरी आत्मा से जो एक-एक अक्षर बाहर आने की छटपटाहट मे हे वे मेरे ज़िस्म के साथ ही जल जाएंगे। मै अक्षर की आत्मा के साथ कोई न्याय नही कर पाऊँगा। मेरे अक्षरो की छटपटाहट है- दिलो की मुहब्बत को गुनाह करार दिए जाने से ही वर्षो की साधना के बाद भी हम एक नही हो पाए। इसी वजह से कई धर्म बने, कई जातियाँ बनी। काश। दुनिया मे एक ही धर्म होता- मुहब्बत का धर्म।

राजदा। चली आओ हवा बनकर। मे कोई कण बन जाऊ और तुम मुझे उड़ाकर कही दूर बहुत दूर पृथ्वी के पार ले चलो, जहाँ मुहब्बत को गुनाह नही समझा जाता हो जहॉ लोग मंदिर-मस्जिद, गिरिजाघर मे पत्थर की मूर्तियो के आगे गिड़गिड़ाते नही हो, जहाँ मुहब्बत के मायने अल्लाह-ईश्वर हो। दुनिया मे मुहब्बत के सिवा और कोई खुदा नही हो सकता है। जो दिलो को सुकून दे वही खुदा हे। बस मुहब्बत ही खुदा हे। यही खुदा दुनिया के तमाम लोगो की मन्नते पूरी कर सकेगा। यह खुदा किसी जात-धर्म के लोगो का नही है, न ही इस खुदा की कोई जात-धर्म हे, न ही इस खुदा के लहू का रग आदमी के लहू की तरह लाल होकर भा काला-पीला हे। जिसकी देह ही नही उसका लहू क्या होगा? गीले दिलो के एक हाने पर एकाएक चिनगारी की तरह एक पल चमकता है और फिर ज़िन्दगी भर दिलो को रोशन करता है। तब अन्दर का सारा अन्धकार मिट जाता

है। दिल खुदा का घर हो जाता है। खुदा मंदिर-मस्जिद (इमारतो) मे नही बसता है, वह तो दिलो मे, घरो मे बसता है।

मंदिर-मस्जिद मे तो हमने उसके नाम की भात-भात की मूर्तियाँ गढकर बिठा दी। मूर्तियाँ बिठायी सो तो बिठायी, पर उसमे न तो आस्था-विश्वास, मुहब्बत के बीज डाले और न ही उन्हे ईमान और सवेदना से नहलाया। बस, अन्दर बैठाकर दरवाजे बद कर दिए, फिर चारो ओर काटो की बाड़े लगा दी, ऊँची दीवारे खड़ी कर दी। और अब पवित्र धार्मिक स्थल कहे जाने वाले मंदिर-मस्जिद गुरूद्वारे, चर्च काला-बाजारी, जुआ, हथियारो और गैर कानूनी धधो के तहखाने बनते जा रहे है, झगड़े – झमेले के अड्डे बनते जा रहे है। ऐसे मंदिर-मस्जिदो की हिफाज़त के लिए बदूके ताने पुलिस-सेना खड़ी कर दी है, मूर्तियो को बुलेट-प्रूफ पहनाये जा रहे है। वहशी लोग खून-खराबा कर रहे है जो खुदा-ईश्वर के नाम की आग लगाकर, उसमे इसानियत को झोक कर उन पर वोटो की रोटियाँ सेक रहे है वे आने वाली पीढ़ी के मन म नफरत के बीज बो रहे है। आज यह – बदहवोश भड़कीली हवा मेरे देश को कहाँ ले जाएगी? यह एक ऐसी भट्टी सुलगाई जा रही है, जिसमे सिर्फ मेहनतकश (ईमानदार) गरीब तबके के इसान दिन-दिहाड़ी पर जीने वाले मजदूर और व लोग जिनके पास वर्षों की परम्परा का ईमान बचा हुआ है, राख हो रहे है। गुडे-बदमाश और नेताई शरारती तत्त्व इस सुलगती भट्टी से उठती लपटो को देखकर मगर के आँसू बहा रहे है। मै, चिल्लाकर अपनी आवाज़ अवाम तक पहुँचाना चाहता हूँ कि खुदा-ईश्वर अपने घरो – दिलो मे है। मै कबीर की आवाज को आवाज देना चाहता हूँ- 'तन का मन का डारी दे मन का मन का फेर।'

खुदा करे मेरे देश की मिट्टी की गध फिर से महक उठे। बहुत सारे हाथ इस विषैली साज़िश के खिलाफ एक साथ उठे और तन जाए। मेरे देश के बच्चो पर घर के बाहर गली, सड़क, चौराहो पर निकलने-खेलने की पाबदी सी लगी है। मेरे देश क बच्चे फिर से खुद के ही हाथो खुद क ही सिर पर मिट्टी उछाल-उछाल कर खेल उनका बदन मिट्टी से सन जाए। और मेरे देश का हर एक परिन्दा खुली हवा म पख फड़-फडाकर उड़े, तब कही मेरे देश की मिट्टी के दिल को सुकून मिले।

२३ ५ ९३ लाडनूं

भाई के मायने

आज छोटे भाई को गाड़ी मे बैठाने स्टेशन गया। उसने मेरे पाँव छुए। मैने उसे दिल से लगाया। उसकी आँखो मे, वाणी मे नमी उतर आई। मैने उमे मस्त रहने के लिए एवं किसी प्रकार की चिन्ता नही करने के लिए कहा। मैने उसे और भी कई हिदायते दी। वह सुनता-हामी भरता रहा। कुछ बोल नही पाया। सिर्फ हाथ हिलाता रहा। गाड़ी नजरो से ओझल हो गई।

मै थोड़ी देर वही खड़ा शून्य मे ताकता रहा। आँखो से धारा फूट पड़ी जिसे थोड़ी देर पहले तक मै बाँध बनाकर रोके रहा। उसके चेहरे की मासूमियत मेरे अन्दर उतर आई। मै आँखे पौछकर चल पड़ा। वह दूर जा रहा था। कम से कम पूरे एक वर्ष के बाद लौटने को कह रहा था। यू तो विज्ञान ने विश्व की दूरियाँ पाट दी, पर हमारे आर्थिक हालात यह दूरी नही पाट पाए। पिछले दिनो वह बहुत बीमार चल रहा था। पीलिया हो गया था। कुछ दिन अस्पताल मे इलाज चला। डॉक्टर ने भी उसके बचने की उम्मीद छोड़ दी, पर मेरे खुदा का शुक्र है कि मेर भाई का कुछ नही हुआ। अपनी बीमारी के दिना का जब उसने कहा, तब भी मेरी आँख गीली-गीली हो गई थी। होश मे आने पर उसे अपने हालात एव अकेलेपन पर बहुत रोना आया। मुझे उसके बीमार होने की खबर उससे छोटे भाई ने दी थी। बड़े भैया के वहाँ पहुँचने पर उन्हे देखकर वह कितना खुश हुआ और मरे खत को पढ़कर फफक-फफक कर बहुत देर तक रोता रहा। उसके सामने तो रोक लिया-खुद को समझाकर। उम्र मे बड़ा था न, इसीलिए। अब अकेले मे मुँह छिपाए आँसू बहा रहा हूँ। भाई के मायने क्या है? अहसास हुआ। भाई होने का अर्थ एक के दूसरे की सास होना है।

५ ६ ९३ उदयपुर

कभी मुझे भी तस्वीर सा टांग देना

(चीनू भैया के लिए)

प्रिय। मेरे मे इधर-उधर बिखरे अक्षरो को ज्यो का त्यो कलम से कागज पर उतार रहा हूँ, उन्हे ठीक ढग से जोड़कर पढ़ लेना। मैने अपने ही घर मे स्वयं के विरुद्ध खिलाफत कर ली थी। मै मुजरिम हो गया। मुझे कई चेहरो ने घेर लिया। तब मैंने खुद को वहाँ से निकाल दिया और आजाद हो गया। पर वहाँ के कीचड़ मे मेरे पाव सने है और मै पौंछ-पौछ कर थक गया हूँ।

अब मै जी रहा हूँ-मर करके। मुझे चारो ओर से गिद्ध घेरे है। ये मेरे ख्वाबो के कातिल है। मेरे अन्दर दहशत बैठी है। पर नजर उठी है तो दूर खड़े तुम मुस्करा रहे होते हो। मै मुस्कराता हूँ तो चेहरे जल उठते है अन्दर ही अन्दर। चेहरे सिर्फ चेहरे होते है, उनमे गीली जमी नही होती और वे आस-पास की गीली जमी पर ख्वाबो की लहलहाती फसल नही देख सकते है। ऐसे मे किताब, कलम, अँधेरा और चुभे काँटो का दर्द तन्हाई के दोस्त हो जाते है। तुम्हारे-मेरे दोस्त एक है। दोस्ती मे कभी दगा न करेगे। एकाकीपन हमारा अपना घर है, उसकी दीवारो पर ही तुम ख्वाबो की तस्वीरे टागते हो, कभी मुझे भी टाग देना।

१० ६ ९३ उदयपुर

कवि का घर

मै गुजराती कवि-उपन्यासकार रावजी पटेल को पढ़ रहा था। रावजी पटेल, जिन्होंने जिन्दगी को दर्द मे जीया और जो कम उम्र (२९वर्ष) मे ही दुनिया को छोड़ गये। मेने साथी प्रोफेसर से कहा-मै रावजी पर लेख लिखना चाहता हूँ और उनके गाँव जाकर उनके घर की तस्वीर लेना चाहता हूँ। तो वे एकाएक बोल पड़-"भारत के किसी भी देहात के घर की तस्वीर ले लो, वह रावजी के घर की तस्वीर होगी।" सच कितनी बड़ी बात कह गये वो। कवि को घर की चाहर-दीवार मे बाँधना, उसकी आत्मा के साथ घोर अन्याय है। जो हमेशा बन्धनो को काटता रहा उसे चाहर-दीवारी के बन्धन से जोड़ना क्या ठीक हागा? रावजी देहात के कवि है। देहात की सस्कृति एव देहात का दर्द उनके सर्जन की आत्मा है। इसलिए भारत के हर देहात का घर रावजी का घर है।

१५ ७ ९३ कपड़वंज

बड़ी उलझन है घर की

वे कह रहे थे-जब हम सब कही बाहर जा रहे होते है तो बबलू घर पर ही रहता है। वह कहता है-"आप सब चले जाओ। मै अकेला ही रहूँगा और पूरा का पूरा घर मेरा हो जाएगा।" बबलू की बड़ी बहिन मुन-मुन कहने लगी-"वह मुझे तो कहता है-तू ससुराल चली जाए तो तेरी सारी वस्तुएँ मेरी हो जाए।" मै यह सुनकर हैरान हुआ और उठकर बाहर चला गया। रिम-झिम, रिम-झिम बरसात हो रही थी। सामने एक विशाल वट वृक्ष निश्चल खड़ा था। मै बहुत देर तक उसे देखता रहा। नये-नये पत्तो के रग ने मोह लिया। कालिदास याद आए और शकुन्तला के ओष्ठ "अधर किसलयराग " पर, मै बहुत देर तक कालिदास म नही रह पाया। फिर वही वाक्य याद आ गया-"तू ससुराल चली जाए तो तेरी सारी वस्तुएँ मेरी हो जाए।" सभी जानते है और स्वय मुनमुन भी जानती है उसे किसी और घर जाना है।

मुझे बहिन याद आई। मेरी बहिन तो आज भी ससुराल जाती है, या ससुराल से आती है तो उसकी आँखे बरस पड़ती है और उसे देखकर मेरी आँखे भी नम हो जाती है।

शहर मे रहने वालो की सोच कितनी अजीब है। यह एक सच है, परन्तु इस सच म हमे रिश्तो मे बाँधे रखने वाली सवेदना की जमी कितनी सूखती जा रही है। कही न कही कुछ बदल जरूर रहा है।

कैसा होगा मुनमुन का नया घर? क्या उस नये घर के बारे मे वह कुछ जानती है? अगर नही जानती है तो कैसे बना पायेगी एक अजनबी घर को अपना घर?

१७ ७ ९३ कपड़वंज

कुछ चुभने लगा-कील की तरह

हाँ, मेरे जूते फटे नही थे, टूटे भी नही थे
मैने किसी मोची से ठीक भी नही करवाये थे
फिर एकाएक यह कील की सी चुभन
जब आज मैने जूते को उठाकर देखा-
टेढ़ी-मेढ़ी फुहड़ सी, सड़क की कोई कील
मुझसे पूछे बिना
मेरे जूते मे घुसती चली जा रही है
मैने एकाएक
उसे निकालकर फेक दिया
मेरी एड़ी लहू-लुहान होते-होते बच गई।

६ ९ ९३ कपड़वंज

कुत्ता और उसका मालिक

कभी-कभी राह चलते, बिना कोई रोटी का टुकड़ा दिखाए,
बिना कोई पुचकारने-बुलाने की आवाज किए ही
किसी गली से कोई कुत्ता निकलकर
मेरे पैरो मे लोटने लगता है
पर, जब मै उसे
कोई उम्मीद का टुकड़ा नही फेकता हूँ
तो वह मेरी ही पिडली को
पकड़ने-काटने को दौड़ता है और
जब मेरी पिडली उसकी पकड़ मे नही आती है तो
वह जोर-जोर से भोकने लगता है
गुर्राने लगता है
दाँत दिखाने लगता है
तब वह कुत्ता, कुत्ता नही,
लगने लगता है-
उसका मालिक

६ ९ ९३ कपड़वंज

एक बात ग़ालिब से

ग़ालिब साहब!
कोई डोमी तो नही
पर, सुना है-हम पर भी कोई मरती है।
काश!
तुम्हारी बेगम सी
मेरी भी कोई बेगम होती तो
आज ठहाके से हँसती और
अपने कधे उचकाकर कहती-
"हमारा इन्तख्वाब इतना मामूली थोड़ा ही है
उस पर तो दुनिया मरती है।"

१० ९ ९३ कपड़वंज

शब्द

मै कई बार-

कहा कुछ देखकर हैरान हो उठता हूँ। इधर-उधर भटकता हूँ। कुछ ढूंढता हूँ। जब कही कुछ नही मिलता है, तब मेरे अन्दर बैठा कोई सिर हिलाकर मुझे सींग मारता है और मेरी रुह को निचोड़कर नितरने लगता है-अक्षर अक्षर जमी पर और रूप-आकार लेकर उछलने-कूदन लगते है अलीफ , तब कुर्सी पर बैठा मालिक और उसकी रोटी के टुकड़ो की सांकल से बधे कुत्त गुर्राने-भोकने लगते है, काटने दाड़ते है।

१५ ९ ९३ कपड़वंज

जोड़-बाकी

अरी राजदां।
अब क्यो मरेगी कोइ महबूबा?
अब क्यो मरेगा कोई महबूब?
सोची-समझी
गुणा-भाग जोड़-बाकी की
गणित है उनकी मुहब्बत

२० ९ ९३ कपड़वज

फूल होकर बेवक्त मारा गया

मुझे फूल की नही काँटे की मौत मरना है। हँसते-खिलते फूल को कौन देख पाता है यहाँ? उसकी सुन्दरता से, हवा मे बिखरती खुशबू से अन्दर ही अन्दर जल उठते है और उसे कैद कर लेने की चाह मे उसे तोड़कर सूघते है। मंदिर-मज़ार पर चढ़ाते है। गले मे धारण करते है बालो मे खोसते है और उसके मुरझा जाने पर खुशबू के हवा हो जाने पर, राह मे फेक देते है। तब पैरो तले कुचला जाता फूल कराह उठता है-"मै खुद के लिए तो जीया ही नही।"

२६ ९ ९३ कपड़वंज

दुनिया की सबसे बड़ी भूल

लगने की कोरी कल्पना लग सकती है। पर यह बहुत लम्बे समय से चली आ रही दुनिया की हकीकत है। आदम और हव्वा की मुहब्बत से भी बहुत पहले जब यह दुनिया इसानो की बस्ती नही थी। तब सूरज से टूटकर अलग हुआ एक टुकड़ा ठण्डा होकर जमी बना और वह जमी दुनिया की पहली औरत हुइ। सूरज ने खुद के तेज के आगे उस टुकड़े को कुछ नही गिना। पर, पहली औरत ने सूरज के तेज को त्यागकर अन्दर ही अन्दर एक आग को धारण कर लिया। सूरज को इसकी हवा तक न लगी।

जमी सोलह की हुई। उसने पहली-पहली अंगड़ाई ली। उसकी इस अदा पर कोई बादल दिल दे बैठा। दोनो की नजरे उलझ गई और फिर वे कभी नहीं सुलझी। यही सृष्टि की पहली-पहली मुहब्बत हुई। उनकी यह मुहब्बत वर्षों तक कामयाब रही। जब दुनिया मे आदमी क कदम पड़े तो उसे इनकी मुहब्बत से ईर्ष्या हा गई और मुहब्बत को गुनाह करार दिया।

हर एक इसान की जिन्दगी मे ऐसी उम्र का दौर आता है तब वह बादल और जमी की तरह किसी को मन ही मन मे मुहब्बत कर बैठता है और पूरी जिन्दगी उसके नाम कर देता है। पर, दुनियाई रस्मो-रिवाज उनकी इच्छा के बावजूद भी उम्रभर के हमसफर होने की इजाजत नही देते है तो मुहब्बती सपना की हत्या हो जाती है।

अगर यह पढ़ते हुए तुम्हे झूठा लग रहा हूँ तो अपने अतीत मे झांककर अपने दिल को टटोलना, देखोगे, दिल के किसी कोने मे दुबक कर बैठा कोई सासे ले रहा होगा। दिल मे एक खीची हुई लकीर सी भी महसूस करोगे।

फिर दुनियाई रस्मो-रिवाज से जमी का विवाह सूरज से कर दिया गया। यह मुहब्बत तो मुहब्बत । जमी ने दुनिया की इज्जत की खातिर सूरज स जिस्मानी-नाता (विवाह) तो कुबूल कर लिया, पर वह मन से कभी सूरज की नहा हा पाई। दुनियाई मर्द सूरज ने मान लिया कि अब जमी सिर्फ उसकी है। उस पर उसका ही हक है जब-जैसे चाहे उसे भाग सकता है। यहाँ सूरज फिर वही पहले वाली गलती दोहरा गया।

जमी का जिस्मानी फर्ज-अदायगी मे दिल दहल गया। गरम-गरम निसास छूटने लगी। पूरा का पूरा बदन सूरज के ताप मे झुलस गया। ऐसे मे जमी

महबूब को पुकार उठी। उसकी दर्दीली गरम-गरम निसासो भरी आहे बादल के कानो पहुँच गई। वह दौड़ा चला आया। सूरज के रहते-देखते बरस गया। जमी को तर-बतर कर गया। पहले तो सूरज को कुछ समझ मे नही आया। बादल के आने पर जमी को खिलते-हँसते देखकर सूरज मन ही मन जल उठा। उनकी गाढ़ी मुहब्बत उससे देखी नही गई। एकदम तमतमा कर लाल हो गया। पानी की उस बूद-बूद को चूस लेना चाहा जो बादल बरसा गया। पर बादल और जमी की मुहब्बत कोई ऐसी-वैसी मुहब्बत न थी कि सूरज के गुस्सा होने पर टूट जाए और बादल सूरज से मुँह छिपाता फिरे।

दुनिया मे दिखावे के तौर पर तोड़ी हुई सारी की सारी मुहब्बते कभी नही टूटी।

बादल का बरसा हुआ पानी जमी मे बहुत गहरे उतर गया ओर वह पल, हर पल जमी की रगो मे दौड़ता रहा। सूरज तप-तपकर थक गया, पर जमी मे बहुत गहरे उसकी रगो मे उतर चुके पानी को वह नही चूस पाया। जो बादल बरसकर जमी को तृप्त कर गया, उस पानी को ऊपरी तोर पर भले सूरज ने चूस लिया तो भी उसके द्वारा चूसी हुई बूद-बूद फिर बादल बन गई जमी को तृप्त करने के लिए।

एक दिन बादल ने आकर अपनी महबूबा के माथे को चूम लिया तो वह रो पड़ी। कहने लगी-"यू जिस्मानी तौर पर भले मुझे विवाह की रस्सी से सूरज के साथ कसकर बाध दिया, पर रस्सी से भी तुम्हारी मुहब्बत के बरसते पानी मे ज्यादा मजबूती थी, जिससे मै मन से कब बध गई पता तक नही चला।" बादल ने कहा-"दुनियाई विवाह के खूटे से सिर्फ जिस्म ही बाँधे जा सकते है। मन तो मुक्त वह तो वही घूमता है-फिरता है जहाँ उसकी मुहब्बत है। मुहब्बत कुदरती है, विवाह आदमी के दिमाग से उपजी हुई व्यवस्था है। व्यवस्था टूट-बिगड़ सकती है, पर कुदरती मुहब्बत न टूटती है, न बिगड़ती हे न बिखरती है।"

यह सुनकर जमी सिसक उठी-"फिर दुनिया ने मनुष्य के दिमाग से उपजी व्यवस्था को क्यो अपनाया?" बादल ने कहा-"यही दुनिया से सबसे बड़ी भूल हो गई।"

२९ १० ९३ कपड़वंज

चाहा तो बिछा लिया चाहा तो समेट लिया..

विवाह भी वैश्यालय की तरह एक सौदे-बाजी ही है। फिर भी वैश्यालय जाते वक्त आदमी ओढ़ी हुई जात-धर्म की चादर को बाहर छोड़कर जाता है। तब वह सिर्फ आदमी होता है। दैनिक जीवन मे भोजन मे स्वाद-परिवर्तन की मनोवृत्ति ही विवाह-जीवन मे भी घुस आई है। कभी मीठा कभी खट्‌टा और कभी तीखा । हमने हमारे इस सवेदनशील सम्बन्ध को बिस्तर एव भोजन की तरह ही मान लिया है। जब चाहा बिछा लिया जब चाहा समेट लिया। कभी चाहा तो घर पर खा लिया और कभी बाहर।

बाहर बड़ी सुविधाएँ हो गई है।

२९ १० ९३ कपड़वंज

सांसों मे सास देने के लिए

कल 17 11 93 का दिन, जिन्दगी का दूसरा खूबसूरत दिन था जिसमे मैने कला एव कलाकार को एक रूप मे देखा। यू अधिकतर कलाकार एव उसकी कला को अलग-अलग चेहरो मे देखा। इससे पहले 11 जनवरी 1992 के दिन चीनू भैया एव मै दिल्ली मे अमृता जी प्रीतम से मिले। कल उन्ही चीनू भैया एव प्रभो, दादा, दीपू भाई और प्रिय नीटू के साथ गुलजार साहब से मिला। बिल्कुल वही हाल हो रहा था हमारा, जैसा अमृता जी से मिलने गये थे। बड़े डरे से, सहमे से। कैसे-क्या बात करेगे इतनी बड़ी शख्सियत से? पर मिलने की इच्छा को भी रोक नही पा रहे थे। सच, चीनू भैया कभी कलाकार नही हुए। स्वयं कला बनकर जिए। और वही कला हमे उस कला के करीब खीचकर ले गई।

शिल्पग्राम पहुँचे तो गये। चीनू भैया ने गुलजार साहब की ही एक नज्म पर कोलाज बनाया था। गुलजार साहब अन्तर्राष्ट्रीय बाल एव युवा चलचित्र समारोह के समापन के लिए तैयार किये जा रहे मच का निरीक्षण कर रहे थे। जब हम उन तक पहुँचे तो कोई पत्रकार उनसे बात कर रहा था और फोटोग्राफर फोटो पर फोटो खीचे जा रहा था। इतनी बड़ी शख्सियत साधारण से मुड्डे पर बैठी थी। हमे आश्चर्य हुआ। बिल्कुल सीधे-सरल । स्वय कला।

उनके करीब पहुँचकर उन्हे बताया कि हम दोस्त है-कागज ओर कैनवास के। उन्होने मुस्कुराकर देखा। चीनू भैया ने जो कोलाज बनाया था उसे देखकर वे बहुत खुश हुए। जब हमने उनको 'कोलाज का सच', 'सफर से पूर्व', एव 'शब्दो' का सौदागर' पुस्तके भेट की तो आश्चर्य भरे आनद मे कहा-"पढ़कर पत्र लिखूँगा।" गुलजार साहब हमे पत्र लिखेगे, दिल भर आया। लोटते वक्त पैर छूकर प्रणाम किया तो कहने लगे-"नही नही, हाथ मिला लीजिए। आप लोग बहुत स्नेह देते है।" मुझे याद आया जब हमने अमृता जी के पैर छुए तो उन्होने भी ऐसे ही कहा-"नही नही, यह नही, तुम तो मेरे फ्यूचर हो।" एक अहसास है गहरे। जिसकी कोई जुबान नही।

'शब्दो के सौदागर' के खुलने वाले पहले पृष्ठ पर मैने उनके लिए लिखा-"जिन्दगी और मौत की हकीकी को बया करते हुए जिन्होने लिखा है-

"क्या पता कब कहाँ से मारेगी
बस, कि मै जिन्दगी से डरता हूँ
मौत का क्या, एक बार
मारेगी।"
उन्ही गुलजार साहब को तहदिल से-
यू, मै भी रोज साझ ढले मरता हूँ
पर, हर सुबह सूरज के उगने के साथ ही
कुछ सासे बटोरकर
दुनिया के तमाम कलाकारो की सासो मे सास देने के लिए
नही जानता, मै क्या कर रहा हूँ,
पर जो कुछ कर रहा हूँ
उसी मे से है यह 'शब्दो का सौदागर'।

१८ ११ ९३ उदयपुर

खुदा तुम्हारी दुआएँ कुबूल करे

बड़ी कश-म-कश मे कल कड़े खरीदे। प्रभो साथ मे थे।

मै नही जानता ये कड़े जिन्दगी का क्या देगे।

एक कड़ा हमारे पास था। उसी के माप के कड़े खरीदने थे। यह माप किस हाथ का है? फिर कभी बताऊँगा। तुम सोचोगी मुझे 'राजदा' कहते हो और मुझस ही छुपा रहे हो। पर राजदा। मै जानता हूँ तुम किसी को हवा नही लगने दागी। पर हवा खुद आकर खबर ले गई तो? तुम्हारे दिल की परत-दर-परत मेरी सासो का राज है। तुम तो जानती हो मेरी जिन्दगी के सच को। जिन्दगी की टेढ़ी-मेढ़ी राह पर अकेले ही चलना है, जिसम काँटो भरी निगाहे है। मे जल-जलकर रोशनी दूँगा। कोई आँसू छलके भी तो खुशी का।

कड़े खरीदकर दुकान से बाहर निकले ही थे कि एक भिखारी एव भिखारिन ने हाथ आगे बढ़ा दिए। पता नही मै उस समय कौनसी दुनिया मे था। प्रभो ने जेब मे से पैसे निकाले और देने के लिए मेरे हाथ मे थमा दिए। मैने भिखारिन के हाथ मे रख दिए तो भिखारी एव भिखारिन "खुदा तुम्हारी दुआएँ कुबूल करे।" कहकर आगे बढ़ गए। तब प्रभो ने कहा-"हमने कड़े खरीदे है, जरूर इनकी दुआ फलेगी।"

१९ ११ ९३ उदयपुर

भरी दुपहर...वर्ष फिसल रहा है...

यू लम्बे अन्तराल के बाद यह शाब्दिक मुलाकात हो रही है। पर दिली-तौर पर अकेले मे, सफर मे तुझसे बतियाता रहा हूँ। पता नही, तुम कौनसी दुनिया मे खो गई और मै नई दुनिया की तलाश मे भटक गया। जब आँख खुली तो सूरज बहुत ऊपर चढ़ चुका था। एक ताप मैने अन्दर सुलगते महसूस किया। लगा यह सूरज मेरे माथे के ऊपर बैठ गया है और धीरे-धीरे सीने मे उतरता चला जा रहा है।

पूरी की पूरी उम्र इसके ताप को ढ़ोना है।

सुबह बीत गई। भरी दुपहर है। कुछ छलक रहा है और अन्दर मछलियाँ तड़प रही है। अजीब दौर है जिन्दगी का। जिन्दगी का एक और वर्ष मेरी मुटठी की पकड़ मे से फिसल रहा है। रोके नही रुकेगा। देकर जाएगा-सड़क पर टूटी इधर-उधर बिखरी चप्पले, लहुलुहान पड़े सूने शरीर. नवजात को मुँह मे पकड़े भागते कुत्ते रोटी को बिलखते बेघर भीख मागते पेट, मंदिर हुई न मस्जिद की नपुसक राजनीति

जाते-जाते यह वर्ष तो मुस्करा देगा मेरी सूनी आँखो मे देखकर-"मै तो यह चला अब तुम रहे यहाँ, भोगो यह नरक की सी जिन्दगी। जानता हूँ कल तुम सारे के सारे दोष-दर्द घटना-चक्र मेरे मत्थे मढ़ दोगे। पर मै और आने वाला हर वर्ष चले जायेगे चले गए और वर्षों की तरह

२३ १२ ९३ कपड़वंज

क्या नाम दूं इस ज़िन्दगी को?

(एक खत प्रभो के नाम)

यह पूरा का पूरा वर्ष कल बन जाने वाला है। अपनी पकड़ मे रखना भी चाहूँ तो पकड़ मे आने वाला नही है। आसमा मे बादलो की गर्दिश है। कल हट जाएगी। पर मेरी गर्दिश भरी जिन्दगी मे कौन चाँद-सूरज बनकर निकलेगा। अमावस मे पूनम का अहसास सिर्फ एक ख्वाब है, एक फूल है, जो हवा के झोके से फल बनने के पहले ही झर जाने वाला है, मिट्टी बन जाने वाला है। नजर उठती है तो वृक्ष पर ठहरी, पीली होती सासो पर अटक जाती है ये सासे धीरे-धीरे पूरी पीली होकर झर जाएगी। कभी ये हरी-भरी भी रही होगी।

क्या नाम दू इस जिन्दगी को? कुछ समझ मे नही आता। हम एक-दूसरे का आईना क्यो हुए? आईना होकर भी दूर-दूर क्यो हुए? कभी लगता है, हम बहुत कमजोर है। हालात से लड़कर भी पूरा लौहा नही ले पाते। हम पर दिमाग हावी हो जाता है और दिल कसमसाकर आहे भर लेता है।

२७ १२ ९३ कपड़वंज

बिन द्वार की दिशा हूँ

दीपावला की छुट्टियो मे इधर-उधर भटकता फिरा। लगता है धीरे-धीरे सारी दिशाएँ अपने द्वार बन्द करती जा रही है। दिशाओ के अपने द्वार है, बद करने का उन्हे हक है।

बिन द्वार की दिशा हूँ मै तो। क्या खुला रखूँ, क्या बद? घर हो तो दरवाजा हो। घर ही नही, तो सिर कहाँ छिपाए?

हमने मकान तो बहुत-बड़े-बड़े खड़े कर दिए, पर हम घर नही बना पाए।

मै भी 'घर' के लिए तरस गया हूँ।

३० १२ ९३ कपड़वंज

घर को क्या नाम दोगे?

एक वाकया याद आ रहा है। कोई एक दिन सूरज ने कुछ ही डग भरे होंगे। और भी कई साथी बैठे थे। एक-साहब ने कहा-"कोई अच्छा नाम बताओ घर के लिए। क्या नाम दें?" सभी सोच-समझकर बताने लगे। मै बीच मे यकायक बोल गया-"घर को घर ही रहने दो। घर को क्या नाम दोगे? घर का और कोई नाम नही होता। घर सिर्फ घर ही होता है। मकान के बाहर लिखना ही है तो लिख दो-"घर"।

३१ १२ ९३ कपड़वंज

परवाज, ख्वाब, और जमी

जब व्यक्ति घर से ही बेघर हो जाए तो सारी दुनिया ही उसका घर हो जाती है और वह कही का नही रहता। इसलिए वह सब कही का हो जाता है।

सभी की बहुत याद आती है। अतीत को फिर से जीने के लिए तड़प जाता हूँ। मन करता है अभी ही उदयपुर शहर के लिए परवाज़ भर लू। पर, वक्त मेरे पाव काट देता है और पूरा का पूरा जमी मे धस जाता हूँ। पर है कोई स्नेहिल अहसास जो मेरे सीने मे सासे पूर जाता है और धीरे-धीरे बाहर निकलता हूँ।

कब वक्त मुझे नगा कर दे और मेरे नगेपन को देखकर मेरे तमाम अजीजा की नजरे दुनियाई नजरे हो जाए और मुझसे नफरत करने लगे। वे यह सोचना भूल जाए कि मेरे बदन पर से कपड़े वक्त ने उतारे है। मेरी सासे कहीं दूर छूट गई है और वक्त ने अपन हाथो से मुझे आकाश मे उछाल दिया है। पता नही कब गिरकर चूर-चूर हो जाऊ।

मेरे लिए खुदा ने सिर्फ ख्वाब ही बख्शे है। ख्वाबो की ज़मी दिल हुआ करती है। ख्वाब बहुत नाजुक होते है री। जब उन्हे हकीकत की जमी पर उतारने की चाह कर बैठते है तो ख्वाब टुकड़े-टुकड़े होकर दिली-जमी को ही तोड़ देते है। मै भी हकीकत की जमी के चक्कर मे पड़ गया और आर्थिक हालात ने मुझ पर हमला बोल दिया, मेरे पग एक जगह गाड़ दिए है। और कोई कदम उठाते नही उठ रहा है।

६ १ ९४ कपड़वंज

अन्दर का सच आँखें कैसे देखें?

कितनी सारी तस्वीरे है अतीत की।

कुछ मैली होकर भी कितनी सुन्दर लगती है री, कितनी सुन्दर होकर भी कितनी मैली। कुछ तस्वीरो को हाथ से मिटा दिया, फिर भी बिम्ब उभर आते है। ऐसी ही एक तस्वीर है। जो आज भी मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। जिसे मैने अपने हाथो से पूरा मिटा दिया था। वह जब भी मेरे सामने होती है, मै उसमे पूरा नग्न नजर आता हूँ। ओढे हुए विचार कपड़ो की तरह उतरते चले जाते है। लोग ठठाकर हँस देते है। मै भी हँस लेता हूँ अपने नगेपन पर। दुनियाई नजरे उसे सच मानती है। इच्छा होती है फलक पर लिखे चश्मदीद (प्रत्यक्ष प्रमाण) को मिटा डालू। बहुत सी बार, बल्कि अधिक बार आँखो का देखा झूठ होता है। दुनियाई आँखो का देखा सिर्फ बाहरी होता है। अन्दर का सच आँखे कैसे देखे?

जिन्दगी भर मे हम एक सच भी नही जीते है री राजदा।

२० १ ९४ कपड़वंज

जब व्यि
जाती है और वह

सभी द
जाता हूँ। मन क
मेरे पाव काट दे
अहसास जो मे

कट
अजीजो की
सोचना भूल
छूट गई है
कब गिरव

करती है
की चा
है। मै
पर ह
उठ

भूखे रहने की दुआएँ
(भाई श्री गगन दाधीच के लिए)

बहुत ही अच्छा समूह था उदयपुर मे। वक्त और पेट के मारे बिखर गया। पेट से बड़ा कोई नहा। हम पेट के मारे मर जाते है और कुछ करने के सपने छूट जाते है। पेट की आग के आगे सपने नही टिकते है। हम पेट के भरते ही सपना को सुला देते है। पर सपने सा करके भी नही सोते है, जागते रहते है उम्र भर, कि कोई उन्हे गले लगा ले।

खाली पेट का नाम सपना है। जीवन मे खाली होना बहुत जरूरी है एक कलाकार के लिए। कलाकार की भूख उम्मीद की भूख होती है री, और वह उम्मीद सपने होती है। हमे भी उम्रभर भूखे रहने का शाप मिल जाए तो हम सासे ल सकेगें। मुझे नही लगता है कि भरे पेट कभी सासे ले पाते होंगे सपनो की।

मै तुम्हे उम्रभर भूखे रहने की दुआएँ देता हूँ। सपने देखने के लिए, सास लेने के लिए भूख रहना जरूरी है।

३ २ ९४ कपड़वंज

आओ! मेरे अन्दर आओ

फिर, शाम उदास हो गई, सुबह ऊघती हो गई।

बाहर आँगन मे खाट पर बैठा हूँ अकेला।

सामने खुला मैदान और उसमे पसर कर बैठा हुआ अँधेरा। अँधेरे को चीरकर किसी कुत्त के भाकने की आवाज कानो तक पहुँच रही है। बल्ब के इर्द-गिर्द मधुमक्खियाँ मडरा रही है। मधु-मक्खी से डर लगता है। वह गुनगुनाती है, रस चूसती है और काटती भी। उसने मुझे सूघा है, काटा है। पर मेरे अन्तम् की गध को नही पहचाना।

मै कोई ऐसा-वैसा फूल नही हूँ कि मडराती मधुमक्खी के आगे खिल जाऊ और वह सूघकर उड़ जाए।

अन्तस् की गध को पाना है तो उसे मेरे दर्द मे भीगना होगा।

जलने की बात मै नही करता। जलना राख होना है और भीगना एक-मेक हाना है। यू दर्द भले मेरी पहचान है, पर उसके पार छलकता आनद का दरिया भी है।

सुवह मे, रात के गर्भ से पैदा हुए सूरज की तरह मेरे हाथा मे भी कोई सूरज उछलेगा। रात के सफर को तय करना है। अँधेरे मे उम्मीद, आँसू, विश्वास के कदमो को टूटने मे बचाना है।

तारो की झिल-मिल तारो तक ही रह जाती है री। मै तारो की ओर देखता हूँ तो उन्हे मान आ जाता है।

तार रात की छाती के अँधकार मे लौ जगाए रहते है। पर भरी दुपहर मे कौन विश्वास की लौ जगाए बैठा रहता है? मै तारा नही हूँ, चाँद भी नही हूँ, न मै सूरज ही हूँ। ये सब के सब धोखबाज है। अँधेर क दौरे मे छिप जाते है, विश्वास-प्रेम मे दगा करते है झूठ-मूठ की जिन्दगी जी लेते है। मुझे नाटक करना नही आया। कही मेरी पूरी जिन्दगी को नाटकीय जिन्दगी का शाप न मिल जाए। मैन ता खुद ने ही खुद को शाप दिया है-दुनिया की नजरो मे।

दुनिया क्या जाने कि मै कौन हूँ?

कलाकार की दुनिया अन्दर की दुनिया होती है री राजदा।

यह दुनिया जो दिखाई दे रही है, वह एक फ्रीज है। जो बाहर से एक उम्मीद लगती है। पर, फ्रीज अन्दर से खाली है।

आओ! दुनिया आओ!

मेरे अन्दर आओ!

मै तुम्हे विश्वास से नहलाऊ

काशी-हरिद्वार जाने की जरूरत नही पड़ेगी

गगा मेरे अन्दर बह रही है।

७ ४ ९४ कपड़वंज

ज़िन्दगी दर्द क्यों हुई?

प्रभो आए, लौट गए। पहले दादा आए, बहार आई। रूठे हुए दिनो को मना गए। प्रभो उन्हे हँसा गये।

कल के बाद कॉलेज मे छुट्टियाँ हो रही है। घर लौटने के दिन आए है। मित्रो के सिवाय और कोई घर दिखाई नही दे रहा है। मेरी जिन्दगी को मै बेहाल करते जा रहा हूँ। कभी जिन्दगी से दूर खड़ा होकर देखता हूँ तो वह बिलखकर मुझसे लिपट जाती है। कहती है-"मेरी सासे कम क्यो करते हो? तुम कलाकार होना चाहते हो न? पता नही हर कलाकार ऐसा क्यो करता है मेरे साथ? क्या मुझे दर्द दिए बिना कलाकार नही हुआ जा सकता? खुद की जिन्दगी को दर्द देकर क्या कलाकार होना? क्यो हर कलाकार को जिन्दगी से ज्यादा दर्द प्यारा होता है? क्या दर्द के बिना कविता नही होती? आनद की भी कविता होती है रे कलाकार।"

८ ४ ९४ कपड़वंज

चीनू भैया को एक खत

चीनू भैया।

कुछ ऐसा ही बना कि कही खत लिखते न बना। इन दिनो विश्वविद्यालय की कॉपियाँ जाँचने का 'धधा' कर रहा हूँ। आग सी बरसती गर्मी सूरज खामोश है। वृक्ष के झुरमुट मे से आती कोयल की कु कु ही हूक मेरी खामोशी को तोड़ती है।

दुपहर मे पपीहा प्यासा है। बदली को पुकार रहा है। पर दूर-दूर तक कही कोई बदली नही दीख रही है। भीड़ से बचकर यहाँ विश्विद्यालय के 'अतिथिगृह' के एक प्रकोष्ठ मे सुस्ताता हूँ, ऊँघता हूँ कोयल-पपीहा जगा देते है। एक याद छेड़ देते है। सोचता हूँ जीने का वक्त है, कहाँ इस झमेले मे फस गया हूँ। पर हर एक वक्त जीने की इजाजत कहाँ देता है?

जिन्दगी की गणित शायरी से बहुत अलग है। कड़कड़ाती दुपहर है। गुलज़ार साहब अमृता प्रीतम, निदा फाजली बहुत याद आते है।

मुझे खामोश रहने का शाप मिला है। फिर भी दिली-तौर पर, अकेले अँधेरे के कोने मे बैठकर जिन्दगी का ताना-बाना बुनता हूँ। सुबह होते, लोगो के जाग जाने पर टूट जाए, यह बात दूसरी है। 'नीटू दीदी' का कार्ड मिला है। बहुत सुन्दर है। दीदी! स्नेह बनाए रखना। स्नेह पत्थर-काँच नही होता है। वह तो पानी की धार होता है। बहती रहे सतत उदयपुर शहर को सलाम। फखरू भाई को सलाम। 'हो डा' को सलाम। 'आसमान के घर' को सलाम। छोटे-छोटे फूलो को सलाम। सुबह-सुबह दुनिया की खबर देकर जाने वाले हॉकर, होटलो मे कप-प्लेट धोते, तवा-कड़ाही चमकाते नन्हे-नन्हे हाथो को सलाम।

२१ ४ ९४ अहमदाबाद

कोई उम्मीद रही होगी

इसी महीने की ग्यारह तारीख को बैंक से लौटा, तो देखा-दरवाजे के ताले पर एक पर्ची लगी हुई है। निकालकर पढ़ा-

" हम आकर
घर जा रहे है ।
हे मेरे साहब तुम्हारी जिन्दगी मे
अब कोई गम न रहे
हम रहे, ना रहे
तुम्हारी खुशियाँ सलामत रहे।"

मै हैरान रह गया। कई ख्याल आए, पर कोई ख्याल मेरा नही हुआ। जिनसे उम्मीद थी कि शायद 'वो' आए हो। जब 'वो' मिले तो उन्हे पर्ची बताई तो कहने लगे-"पता नही कौन लगा गया। जरूर कोई तुम्हारा चहेता होगा। कॉलेज की दीवारो पर चॉक से लिखे शब्द मेरे सीने मे उतर गये-"तुम मेरे हो राज (नाम) मेरे। जरूर कोई उम्मीद रही होगी जो दरवाजे तक आकर लौट गई।

मुझे खुद को ही पता नही है कि मै किसका हूँ?
क्या मे खुद खुद का हूँ?

२१ ४ ९४ अहमदाबाद

ज़िन्दगी की हमशक्ल

आज 'वह' कमरे पर आई। कौन? यह नही बताऊँगा फिलहाल। अगर जरूरी हुआ भी तो बाद मे कभी बता दूँगा। वैसे भी क्या रखा है नाम में? ओढ़ा हुआ ही तो है नाम। हकीकत तो दिल ही होता है री।

पढ़ने के लिए कुछ किताबे चाहिए थी। वह एक-एक किताब को निकालकर देखती रही। कहने लगी-"कौन कौनसी किताबे लू?" मैने कहा-'यह ले लो। यह ले लो।' "रूप राणी" ईसाडोरा डकन की 'आत्मकथा' को निकालकर देते हुए कहा-"यह जरूर पढ़ लेना। जीवन की सच्चाई का दर्द बूद-बूद टपकता है शब्द-शब्द मे।" वह किताब लेकर देखती रही। कहा-"तुमने अपनी सब किताबो की यह क्या हालत बना रखी है? बहुत दया आती है।"

मैने कहा-"किताबे मेरी जिन्दगी की हमशक्ल है।"

वह एक पल मुझे देखती रही। फिर उसने मुझसे एक प्रश्न किया-"इतनी सारी किताबे पढ़कर मै जाऊँगी कहाँ?"

"फिर कभी बताऊँगा।"

"नही, अभी बता दो।"

"उसे बताने के लिए बहुत वक्त चाहिए।"

फिर वह किताबे लेकर चली गई। जाते-जाते गली के उस मुँहाने से एक बार मुड़कर देखा जरूर, पर मुस्कराई नही।"

मैने उसके द्वारा लौटाई हुई किताब को देखा। फटी-जर्जर हुई किताब को जिल्द मे बाँधकर ठीक कर दिया था। कुछ देर तक इस किताब और मेरी जिन्दगी को देखता रहा-"काश! बिखरी-बिखरी जिन्दगी को जिल्द मे बाँधकर ठीक करने वाला होता कोई।"

किताब को खोलकर देखा। उसके अन्तिम पृष्ठ मे गुलाब के फूल रखे हुए थे। सूखे हुए गुलाब के फूल   साथ मे पत्तियाँ भी थी सूखी   सूखी

मै सोचता रहा   सोच रहा हूँ

२४ ४ ९४ कपड़वंज

एक लड़की का विश्वास .. एक मर्द का विश्वास...

सजय भाई से कोई वहुत पुरानी पहचान नही है। कुल जमा दो-तीन मुलाकाते हुई होगी। पर आज वे दिल खोलकर बाते कर रहे थे। उनकी कोई मित्र है और दोनो विवाह किये बिना पूरी उम्र साथ रहेगे। मुझे एक अहसास ने घेर लिया। कितना विश्वास है एक का दूसरे मे। एक लड़की का विश्वास + एक मर्द का विश्वास =विश्वास ही तो है प्रीत।

सच भी है- क्या विवाह कर लेने पर ही साथ रहा जा सकता है? विवाह तो एक व्यवस्था है सिफ। शायद उन लोगा क लिए जा प्रेम नही करते, जिन्हे प्रेम करना नही आया।

प्रीत के बन्धन मे जो मुक्ति है उससे बड़ी कोई मुक्ति नही। दिन-प्रतिदिन विवाह-विच्छेद एव विवाहेतर सम्ब ध बढ़ते जा रहे है। कही न कही प्रीत का अभाव एव अविश्वास ही कारण है इसम।

प्रीत-बिन क सम्बन्ध खोखले होते है। "दुनिया क्या कहेगी?" यही सोचकर पति-पत्नी खोखलपन मे पूरी उम्र काट देते है। उम्र का 'कटना' और 'काटना' मे बहुत अन्तर हे। 'कटना' प्रकृति की प्रक्रिया है और 'काटना' मजबूरी है, दिल को मारकर कुदरत के खिलाफ झूठी लड़ाई लड़ना है।

हमे दिली-तौर पर जीना नही आया। जब तक अन्दर-बाहर की दुनिया एक नही हो जाएगी तब तक जिन्दगी की सच्चाई पर पर्दा ही रहेगा।

मै भी पर्दा डाल कर रहता हूँ उस पर जो दिल को गवारा नही और जिसे दुनिया को बताना जरूरी नही समझा।

जो मुझ अन्दर से स्वीकार नही दिखावे के तौर पर भी मुझे वह स्वीकार नही।

दर्द ही मेरा हमसफर है।

खुदा करे मुझे भी सजय भाई सा विश्वास का आईना मिल जाए मेरी दिली-दुनिया क सपने देख सकूं उसमे।

२ ५ ९४ अहमदाबाद

कोई छत दिखाई नही देती

आज साझ ढले, 'विजय चौराहा' के फुटपाथ पर ढाबानुमा बनी चाय की दुकान (किटली) के मुड्डे पर बहुत देर तक बैठा रहा। बेवजह कोई बैचेनी खाए जा रही है। मन लौट जाने को कर रहा है। पर लौटू भी तो कहाँ? कोई राह नज़र नही आती। किसी छत की छाह दिखाई नही देती। अपने ही अपने नही हुए। मै खुद से ही कही भाग जाना चाह रहा हूँ। खुद से भागकर कहाँ जाऊँ?

खुद ही तो रह गया हूँ खुद के लिए। सिर पर माँ के आचल का साया है। माँ के चेहरे पर झुर्रियाँ छा गई है। बहुत डर लगता है हवाओ से। ये हवाएँ कही यह पल्लू उड़ा न ले जाए।

मेरे प्रदेश से भागकर आया एक छोटा सा पेट कहता है-नाम मेरा कालूसिह, गाँव रामा, जिला उदयपुर। यही कोई दस-ग्यारह वर्ष का पेट होगा, कमाने निकला है घर से माँ को बताए बिना। कालू सिह को देखकर जिन्दगी कई सूरता मे दिखाई दी। पर, हर जिन्दगी अपनी राह खुद ढूंढ लेती है।

३ ५ ९४ अहमदाबाद

...और सब मन के गढे-झूठे रिश्ते. .

मन के पखो ने परवाज भर ली है, ठेठ गाँव घर के आँगन मे लगे तुलसी के बिरवे की दाई ओर बने चूल्हे के पास बैठी माँ सूरज के जागने से पहले राख को कुरेदकर रात को ओठी हुई आग की चिनगारियाँ ढूढ रही है।

फिर वह चूल्हे मे छाणा देकर बरतन लिए बाड़े मे गाय का दूध दुहने गई है थाड़ी देर मे लौटकर मुझे आवाज देकर जगाएगी और चाय की पतीली चूल्हे पर चढ़ायेगी।

आँखे भर आई है आज ही माँ के पास चला जाऊं और उसके आचल के पल्लू मे रुपया-अठन्नी की तरह बध जाऊं और वह मुझे अपनी कमर मे खोस ले मेरी उम्र पूरी हो जाए।

दुनिया मे सिर्फ एक ही रिश्ता है जो टूटकर भी नही टूटता है-माँ का रिश्ता। कुदरत ने बख्शा है। और सब मन के गढ़े झूठे रिश्ते।

१३ ५ ९४ उदयपुर

बदला हुआ शहर

यह शहर बदला-बदला सा लगता है। शहर की पूरी सूरत ही बदल गई। रेस्तरा मे घण्टो तक बैठकर चाय की चुस्कियो के साथ कई मुद्दो पर वे लम्बी-चौड़ी बहसे ठहाके कहाँ खो गये?

वो साथ बैठकर कविता-कहानी सुनना-सुनाना, गर्म-जोशी से वो बाँहो मे भर लेना। मिलकर-बाँटकर खाना। दुनिया की समस्याओ के 'विकल्प' की शोध म दर रात घर लौटकर किताबो म खो जाना।

सब जहाँ कही मिल जाते तो वही 'घर' बन जाता था। अब कोई 'घर' नही जुड़ता-बनता है कही। सबने अपने-अपने 'मकान' बना लिए है और उनमे कैद हो गये है। पता नही मेरा वो सब कहाँ खो गया? सुबह से शाम तक उसे ढूढता फिरता हूँ, पर कही नही दीखता है। हँसता-खिलता आदमी भागता-दौड़ता शहर हो गया।

बस, एक वो है, जो मेरा आईना है और मै उसकी परछाई। दोनो फतह सागर (झील) के किनारे बैठकर पहाड़ी के पीछे छुपती हुई उदास शाम को देखा करते है। साझ ढलती है तो सपने ढलते है, चिडिया की उड़ान ढलती है, कोयल की कूक ढलती है, पपीहे की पीउ पीउ ढलती है। धीरे-धीरे सब कुछ ढल जाता है।

१९ ५ ९४ उदयपुर

बैठना समय से पहले बूढ़ा होना है

कल, जिन्दगी के पिछले दिनो की तकदीर के बारे मे सोचता रहा। पिछले दिन यानि मृत्यु के नजदीक के दिन। पर, मृत्यु तो कल ही आ जाए। कल क्या? आज, अभी ही आ जाए। उसका आना भी कहाँ से? वह गई कहाँ? सो आए। वह तो सिर पर मडरा रही है। बस, उसके बैठने भर की देर है।

नही, मे उन दिनो की सोच रहा हूँ जो झुर्रियो से भरे-पूरे है, जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गई है।

मै भी कैसा मूर्ख। जो आया नही, उसके बारे मे सोचकर परेशान हो रहा हूँ। पर, जो नही आया, उसी के बारे मे तो सोचा जा सकता है। जो बीत गया सो कल हो गया और उसके बारे मे क्या सोचना?

और जो आने वाला है, होने वाला है। उसके बारे मे सोचने भर से क्या होगा? जो होना है, वह होगा ही। तो, मै घुटनो पर हाथ धरकर बैठ जाऊ? नही, नही मुझे बैठना नही है। चलना है निरन्तर। बैठना तो समय से पहले बूढ़ा होना है। आने वाला कल एक फ्रेम है। उसमे तस्वीर खुद को ही बनाकर गढ़नी है। मैने खुद से कहा- 'चल उठ। आईने मे देख। आँखो मे कितने ही रग-बिरगे सपने तैर रहे है। उन्हे हथेली पर उतार ले। फिर जरूर कोई नजर तेरे सपनो को लगेगी और सपने हँसने-खेलने लगेगे।'

२० ५ ९४ उदयपुर

आईने का कोई आईना नहीं

आईने के सामने था। आईना कहने लगा-" मै बहुत साफ सुथरा लगता हूँ न, मै आईना हूँ। तुम रोज मुझमे देखते हो। कभी हँसती, तो कभी उदास आँखे लिए, कभी जुल्फ सवारते-गुनगुनाते हुए, दाँत देखते-दिखाते हुए, दिन रात मे कितनी ही बार खुद को निरखते हुए।

तुम खुश होते हो तो मै तुम्हे खुश लगता हूँ। तुम उदास होते हो तो मै उदास। आईना हूँ न इसलिए। मै तुम्हारा आईना हूँ, पर मेरा कोई आईना नही। आईने का कोई आईना नही। आईना का अर्थ आईना नही, हमदर्द होता है।

कितने चेहरे समेट रखे है मैने खुद मे। मुझमे सिर्फ तुमने ही नही, कई औरो ने भी देखा है। सब के सब भूल गये। कभी मुझमे झाककर मुझे भी देखा होता, मेरा भी आईना हुए होते तुम, तो आईने कभी नही टूटते। तुम समझते हो आईना ही टूटता है। तुम यह नही जानते कि जब मै टूटता हूँ तो कई चेहरे टूटते है, अरमान टूटते है। टूटते ही तो है, जुड़ता तो कुछ भी नही।

जब भी आँखो ने मुझमे सपने सजोए, तब मेरा जी कहने को करता रहा-"मुझमे देखकर किसी और को अपना सपना न बनाओ। ग़र मै टूट गया, तुम और आईना तलाश लोगे। पर, मैने जिन सपनो को तुम्हारी आँखो मे देखा है, उनका मै क्या करूँगा? मेरे अन्दर तुम्हारे जो सपने उतर गये है, टूटकर भी मुझे उन्हे सभाले रखना है। कितने नाजुक, कितने सलौने होते है सपने।

पता नही क्यो तुम आईने को सिर्फ आईना ही समझते हो। आईने मे कितनी ही सासे, कितने ही सपने जीते है। जब कोई नही होता है तुम्हारे करीब, तब तुम मुझसे बाते करते हो। खुद को देखते-निरखते हो और सपने बोते हो। किसी आहट पर तुम झट से मुझसे मुँह फेर लेते हो। यह कैसी लाज? यह कैसी शरम? यह कैसा झूठ? यह कैसा सच?"

२७ ५ ९४ उदयपुर

सब किवाड़ो पर कीले लगी है

मै खुद खुद का आईना बन गया हूँ। खुद की रूह को जान-पहचान रहा हूँ। खुद को खुद मे देखकर ही तो शब्दो मे खुद की तस्वीर ढाल रहा हूँ, जिसमे जिन्दगी की हर एक सास का तकाजा है। कभी किसी से सासे ली भी तो किस तरह मयब्याज के चुकानी पड़ी। कई सासो ने मेरी सास मे घुल-मिलकर एक होने की कसमे खाई, वादे किए पर कोई सास मेरी सास की नही हुई। मेरी जो सासे उन सासो मे एक-मेक होने गई, उदास मुँह लौट आई, लौटा दी गई। वे सासे मुझमे छटपटा रही है। जिधर देखती है उधर दरवाजे बद है। और सब के सब किवाड़ो पर कीले लगी है। ऐसी कोई गली दिखाई नही देती, जो कही किसी विश्वास के खुले दरवाजे तक जाती हो। कितनी ही बार कीलो मे आहत लहू-लुहान सांसे लौट आई। मेरे अन्दर गहरा अँधेरा कुआ बनता गया और सांसे उसमे कैद होती गई। फिर भी पता नही क्यो? कभी-कभार कोई उम्मीद बाहर झांकती है

२७ ५ ९४ उदयपुर

चेहरे कोई पहचान नहीं बनाते

चारो तरफ यह कैसा धुआँ फैल रहा है? भागते-दौड़ते चेहरो मे कोई चेहरा साफ दिखाई नही दे रहा है। मेरे करीब कितने चेहरे है। मै किसी को नही पहचानता। जानता जरुर हूँ। देखे-देखे से लगते है चेहरे। मेरे चेहरे को भी नही पहचानता हूँ। कई चेहरे है मेरे चेहरे मे। न यह सुबह का वक्त है कि कोहरा छाया हुआ हो न ढलती साझ ही है कि आसमा से अँधेरा उतर रहा हो, न यह चिलचिलाती दुपहर ही है कि ताप के आगे आँखे ही न खुल रही हो। कह लू, यह तो शताब्दियो की कमाई है कि हर चेहरे ने अपने ऊपर कई चेहरे ओढ रखे हे। उतार-उतार करके थक गया हूँ, पर ये तो द्रोपदी के चीर की तरह बढ़ते-फैलते ही जा रहे हे परत दर परत।

चेहरे कोई पहचान नही बनते।
चेहरे कोई पहचान नही बनाते!

२७ ५ ९४ उदयपुर

शाख से टूटा हुआ पत्ता

शाख से टूटे हुए पत्ते की कोई माँ नही होती? पर मन से थोड़े ही टूटता है कोई पत्ता शाख से। हवा बही कि वह टूट गया। इसमे भी पत्ते का कसूर ढूढते है।

शाख तड़प कर रह जाती है और पत्ता हवा के हवाले हो जाता है। हवा के साथ बहता उसमे लड़ता-जूझता अपने को बचाने की कोशिश मे जर्जर होता हुआ टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। तब कौन टुकड़े-टुकड़े हुए पत्ते को जोड़ने बैठता है।

२९ ५ ९४ उदयपुर

माँ नही बदलती

कल यहाँ लौटा। कहने को अपने गाँव   अपने घर   ।
गाँव म बस मरा कोइ रह गया है ता सिर्फ माँ।
दुनिया वदल जाए, माँ नही बदलती।
गाँव पहुँचने के लिए तीन किलोमीटर चलना होता है।

कल, चिलचिलाती दुपहर मे, झुलसाती लू मे माँ मेरे अन्दर उतर गई और कदम दर कदम चलती गई। न मुझे लू लगी और न ही पांवो मे थकान।

जब मैन माँ के पाव छुए ता, मुझ छाती से लगाकर फफक-फफक कर रो पड़ी। मेरी आँखे भर आई, आँसू बहते रहे। वह कई देर तक रोती-बिसूरती रही। मेरा कोई बोल उसे चुप नही कर पाया। जब मै भी रो पड़ा तो वह बोल गई-"बेटा! तू मेरे पेट क्यो आया? मेरे पेट से जन्म लेकर तूने सुख-चैन नही देखा। मै कहाँ जाऊँ? कोई जगह नही दीखती जहाँ डूब मरू। बहती हवाएँ खबर दे जाती-"तेरा बेटा, वहाँ गया।" "कुछ दुश्मन उसके पीछे लग गये है", "अब वह विदेश चला जाएगा, फिर नही लौटेगा।" हर एक खबर मेरी छाती मे चिनगारी दाग जाती। मै जली   जली , तेरे तक आने की कोई परवाज नही भर पाती। कहाँ ढूढती? कैसे ढूढती बेटे तुझ?" उधर बैठ परथु दादा की आँख भी गीली हो गयी छोटा भाई भी बिसूरने लगा।

राजदा! आज सुबह भी यही हुआ। पास बैठी माँ की आँखे फिर भर आई-मेरी जिन्दगी को लेकर। मैने मन मे कहा- "माँ! तुझे बताए बिना कही नही जाऊँगा। तेरा आशीष मेरा आवरण है। कैसे काई दुश्मन उसे भेद सकेगा? और अगर मौत भी आ गई तो उसे कह दूँगा- "थोड़ी देर ठहर, माँ को बताकर आ रहा हूँ।" माँ नही होती तो दुनिया नही होती।

मै नही चाहता 'माँ' सिर्फ मेरी होकर रह जाए। माँ सबकी है, पर माँ का कोई नही।

माँ बूढ़ी है, अकेली है गाँव मे।

३ ६ ९४ खूंटियाँ

समझ के नाम की गलतफहमियाँ

आज सुबह खेत पर गया। लोग कुआ खोद रहे थे। कुआ देखकर तुम याद आई। एक बार तुमने कहा-"औरत जात तो कुआ होती है झूठा और जूठा भी।" आज मैने कुआ देखा-बहुत गहरा। अँधेरा गहराया हुआ था। लोग कुए को खोद-खोदकर गहरा किये जा रहे है, पानी के लिए। जमी की छाती मे गहरा घाव होता जा रहा है। जमी की छाती मे हुए घाव मे से जो रिस रहा है, हम उसे पानी कह रहे है। सच, वह तो जमी की छाती के घाव से रिसता हुआ दर्द है।

औरत भी कुआ है, गहरा, बहुत गहरा। जिसके अधकार मे वह स्वय भटक गई है और मर्द उसे खोदता चला जा रहा है।

जमी की तरस वह कैसे समझेगा? पानी गहरा और गहरा उतरता चला जा रहा है। जमी उसे जरूर सींचती यदि मर्द ने उसकी जुबा को समझा होता, उसके दर्द मे एक हुआ होता उसकी भी तरस को समझा होता।

राजदो! तुमने एक बार यह भी कहा था-"हर जगह मर्द होगा।" सच, क्या मर्द औरत की नामुराद है? कल ही पाकिस्तान की शायरा शगुफ्ता की जिन्दगी एव शायरी को पढ़ा। आज उसे आत्महत्या किये पूरे दस वर्ष गुजर गये। उसने भी अपनी एक नज्म मे लिखा है-"क्या औरत का बदन से ज्यादा कोई वतन नही?" पर, मै सोचता हूँ आज भी दुनिया मे अमृता है तो इमरोज भी है सारा है तो सईद भी है शीरी है तो फरहद भी है, हीर है तो राझा भी है और आदम था तो हव्वा भी थी।

पर, दुनिया मे समझ के नाम पर गलतफहमियाँ ज्यादा है।

४ ६ ९४ खूँटियाँ

जिस्मानी रिश्ते के आगे...

आज फिर गाँव की गलियो मे गर्म अफवाहो को किसी ने हवा दे दी। और मै उसमे जला जा रहा हूँ। चारो ओर भीड़ जमा है, पर कोई आँख गीली नही है। कोई कतरा नही है इस आग को बुझाने के लिए।

राजदा! क्या स्त्री-पुरुष का जिस्मानी रिश्ते से इतर कोई रिश्ता नही है? आज भी स्त्री के मायने जिस्म ही है? जो स्त्री पीढ़ी-दर-पीढ़ी की सीढ़ी बनती है, सीढ़ी बनाती है। पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी के इस सिलसिले मे वह तो गुमनाम ही रहती है। मै औरत मे जिस्मानी रिश्ते के आगे दिली रिश्ता ढूढता रहा, सुकून तलाशता रहा।

४ ६ ९४ उदयपुर

न वो दिल रहे, न ज़मी, न बदलियाँ

रूठी हुई तकदीर को कैसे मनाए?दिली जमी प्यास के मारे तड़प रही है।

कल रात मै-तुम चाँद को खोजते फिरे, कहाँ मिला?

सुलाने की लाख कोशिशे की, पर तपती जमी को चैन कहाँ? नीद कहाँ? कोयल-पपीहे की कूक सी जमी की प्यास तरप रही है। तरसी जमी मे दरारे पड रही है। यो ही तड़पती रही तो वक्त दूर नही कि वह फट जाए।

नजर आसमा की ओर ताक रही है। बदलियाँ उमड़-घुमड़कर आगे निकलती जा रही है। कोई घनी-काली बदली नही दीखती, जो इस तरस को पहचाने।

क्या यह दिली जमी यूं सुखी ही रहेगी? तरसी ही रहेगी? क्या इसे तरस की आग म ही जलकर राख होना होगा?

क्या दुनियाई समझौते-परस्त नही हुआ, इसीलिए खुदा ने यह सजा दी है? गर खुदा की नजर मे भी समझौता परस्त न होना गुनाह है तो यूं तरस मे तड़प-तड़प कर ही मर जाना बेहतर है। वैसे भी यह कुदरती-तरस कितनो के अहसास मे उतरती है।

कौन राह देखता है बदली की यहाँ? और बदलियो को भी कहाँ मिलती है दिली जमी।

राजदां। अब न वो दिल रहे, न जमी रही और न बदलियाँ ही।

८ ६ ९४ उदयपुर

कोई है द्वार पर

भरी दुपहर मे बाहर से आया। हाथ-मुँह धोये। दूध गरम करने के लिए गैस के चूल्हे पर चढ़ाया और पानी पीकर चारपाई पर लेट गया। आँख लगने ही लगी कि एकाएक गध आई। उठकर देखा तो दूध जल रहा है। याद आया पहले भी एक दुपहर मे ऐसा ही हुआ। उस दिन तो पता भी नही चला-कब आँख लग गई? कितनी ही दर दूध चूल्ह पर जलता रहा। मेरा दम घुट रहा था, पर नीद भी भारी थी, उठ नही पा रहा था। दरवाजे पर दस्तक हुई। उठा तो देखा कि कमरे म धुआँ-धुआँ था। एक पल ता कुछ समझ मे नही आया फिर एकाएक रसोई मे जाकर गैस को बंद किया। पतीली मे दूध जलकर काली पपड़ी बन गया था। दरवाजा खोला तो तुम बाहर खड़ी थी। तुमने अदर धुआं देखकर कहा-"यह क्या?" और कोई अनहोनी तुम्हारे साच मे उतर आई थी। तुम काप उठी। मैने रसोई मे ले जाकर बताया तो तुमने पूछा-'यह कैसे?'

"नीद आ गई थी।"

"मेरे खुदा। इसकी रक्षा करना।"

कौन खुदा! किस खुदा से दुआ माग रही हो? वह खुदा तुम ही हो। अगर तुम न आई होती तो?"

"बस, रहन दा।"

मेरे खुदा को खबर थी कि आज कौन इसे मौत के मुँह से बाहर निकालकर लाएगा। मैने उठकर जब गैस बद किया तब खयाल आया, आज कोई भी तो नही था जो आकर दरवाजे पर दस्तक देता?

मौत बाहर खड़ी है पर है कोई द्वार पर जो उसे अन्दर नही आने दे रहा है।

१० ६ ९४ उदयपुर

कड़े कब कगन हुए?

चूड़िया नही, कड़े खरीदे थे। यह सोचकर कि शायद कड़े कगन हो जाए। दिल मे बड़े अरमान थे। खरीदने की समझ नही थी तो बहिन को साथ ले गए ओर झूठ भी बोल गये कि किसी ने मगाए है।

कड़ो की दो जोड़ियाँ खरीदी। एक चाँदी की और दूसरी फैन्सी मे किसी और धातु की।

जिनके लिए कड़े खरीदे देते वक्त उनसे कहा-'पहन लीजिए।'

"नही, ऐसे नही भगवान की प्रसादी करके पहनूँगी।" मै देखता रह गया और वह कड़ो को देखने लगी।" बहुत सुन्दर है कितने के आए?" मुझे लगा-"यह कड़ो की तकदीर है, मेरी तकदीर है।" नसीब मे कगन होना नही लिखा। मानो कड़ो की कीमत से मेरी हेसियत आकी जा रही हो। फिर पता नही, क्यो हुआ कि कुछ दिन के बाद उन्होने उनके द्वारा मुझे लिखे हुए खत माग लिए ओर जो खत मने उनको लिखे थे, मुझे लोटा दिए। थोड़ी देर मे वह अलमारी मे से वे कड़े भी निकालकर लोटाने लगी तो उन कड़ो को देखकर आँखे डबडबा गई। दिल मे एक खयाल यू उतरा-"कड़े भी नही सभले, कगन केसे सभलते।"

मैने कहा-" रख लीजिए कड़े ही है, कगन नही। इनके ऊपर यह नही लिखा है कि किसने किसको कब दिए? पहन भी लोगे तो कोई हर्ज नही होगा। कोई वजन नही लगेगा। और यदि किसी दिन वजन लगे तो फेक्ने से पहले, जरा सोचना।" आज सोचता हूँ कड़े कुवारे ही रहे, कलाई भी नसीब नही हुई। सच कड़े कब कंगन हुए?

१० ६ ९४ उदयपुर

कागज़ और कान का फर्क

दोस्त! जाते वक्त तुमने कहा था "डायरी लिखना।" मुझे लगा कही न कही डायरी तुम्हारी भी 'राजदां' होती जा रही है। और तुम राजदां के भी राजदां।

कहने को तो डायरी कागज के पन्ने है, पर ये कागज के पन्ने अकेले मे मुझसे बाते करते है। हर एक पन्ना उड़कर मुझसे लिपटना चाहता है। डायरी डायरी ही नही है, वह मेरी दोस्ती है, जब तुम नही होते हो तो यही हाल-चाल पूछती है। तुमने देखा है हर एक बात वह मुझसे ले लेती है। यह एक विश्वास का रिश्ता है और सवेदना का भी। कान और डायरी मे यही अन्तर है। कान शब्दो को हवाओ मे बिखेरकर भूल जाते है और डायरी आखिरी सास तक सभाले रखती है। हवाओ का सामना करती है और जब तक मै नही चाहूँ, यह करवट तक नही बदलती। दोस्ती मे कभी दगा नही करती।

तुम दुनियाई नजरो मे अन्दर-बाहर से एक हो गये, पर मैने तो चादर ओढ़ रखी है। न दुनिया के और लोगो की तरह किसी का बुरा करने के लिए, न ही अपना उल्लू सीधा करने के लिए। बल्कि इसलिए कि दुनिया की झोली ही फटी हुई है। यदि उसमे मेरे 'अन्दर' को डाल भी दू तो वह नीचे गिर पड़ेगा। नीचे गिरने के बाद भी मेरा अन्दर बिल्कुल बाहर नही निकल जाएगा। न ही मै उससे मुक्त हो पाऊँगा। वह मेरे अन्दर रहेगा ही। जो बाहर गिरकर भी अन्दर रहे, अच्छा है उसे बाहर ही नही निकलने दू।

कभी तो तुम जरूर सोचते होगे- कैसा नाटकीय आदमी है। पर असलियत यह है कि यह तो हम चद लम्हे है जो इकट्ठे बैठकर बतिया लेते है वरन् दर्द सुनने के लिए दुनिया के पास वक्त ही कहाँ है?

राजदा है, तुम हो, जिनके लिए मैने ऊपर से चादर खुद ने हटा ली और तुमने मेरे 'अन्दर' की सूरत देख ली। अब लगने को यह सूरत कभी बहुत ही खूबसूरत लगे, तो कभी बहुत ही भद्दी। पर यह मेरी अपनी सूरत है, जैसी भी है।

१० ६ ९४ उदयपुर

कौन बसायेगी मेरा घर?

कल गुरूजी ने कहा-"देखो, अब अपना घर बसा लो। पढ़ाई पूरी हो गयी, नौकरी भी मिल गई। घर बसा लेने से समाज मे इज्जत भी बढ़ जाती है, इसके लिए मदद की जरूरत हो तो कहो। तुम्हारे इतने सारे अच्छे दोस्त भी है। कहाँ क्या कठिनाई हे?" मै इतना ही बोल पाया-"मै भी सोच रहा हूँ।" पर किसके साथ घर बसाऊँ? कैसे बसाऊँ? सिर पर मुसीबतो के बादल बरसने को बैठे है। कौन पड़ेगा ऐसे झमेले में? कौन बसायेगी मेरा घर?

बिन घर के मारा हूँ, इसीलिए तो घर का सपना लिए इधर-उधर भटक रहा हूँ। गुरुजी को कैसे कहूँ कि क्या बिन ब्याह घर नही बसता? मै तो बिन ब्याह बसाना चाहता हूँ इक मुहब्बत का घर। ब्याह का घर नही बसाना है मुझे। सात फेरो से तो 'मकान' बनते देखे है 'घर' बसते नही। गुरूजी आपने भी तो मुहब्बत का ही इक घर बसाया था। पूरी जिन्दगी दो शरीरो के साथ रहने से घर नही बसते। बच्चो के पैदा हो जाने पर भी घर कहाँ बसते? घर कभी नही मागता-चाहर-दीवारी आलीशान बिल्डिग घर नही मागता है टी वी फ्रीज, कूलर, पखे चम्की, कार।

कही पर भी बसा लो। हॅसता-खेलता खुला आगन हो, उसमे जलता एक चूल्हा हो कमर मे पल्लू को खोसे चूल्हे को फूकती कोई हँसी एक हाथ से आँखे मसलती दूसरे से धुएँ को हटाती हुई कलाई की चूड़िया खनक उठे तो वही महक उठता हे घर।

११ ६ ९४ उदयपुर

शादी के मायने?

एक दिन मैंने पूछा-'शादी के मायने क्या है?' दो दिलो का मेल शादी है? *अग्नि के सात फेरो का अर्थ शादी है? जिस्मानी रिश्ते का अर्थ शादी है? यहाँ* दो दिलो के मेल से तो शादियाँ बहुत ही कम, नही के बराबर होती है। तो वह कहन लगी-"शारीरिक क्षुधा एक अनिवार्य जैविक आवश्यकता है, पेट को रोटी की तरह। और वह कैसे भी करके पूरी की जाती है। इसमे साधु-सन्यासियो के व्रत टूटते है। पत्नी या पति-व्रत सिर्फ़ ढोंग-ढकोसले होकर रह जाते है।

यह एक हकीकत है कि पुरुष का स्त्री का एव स्त्री को पुरुष का शरीर चाहिए। स्त्री-पुरुष ही क्यों?

दुनिया मे ऐसे कौन से सजीव है जो शारीरिक दृष्टि से विपरीत लिङ्गी एक-दूसरे से जुड़े नही है। प्रत्येक सजीव को कुदरत का यह वरदान है कि वह स्वय म से स्वय के जैसा सजीव उत्पन्न करे। और यह अकेला नर या अकेली मादा नही कर सकती। आज इस प्रकृति मे विकृति ज्यादा घुस गई है।

सोचा- कोई है कपड़वज मे जो मेरी सोच के नजदीक है। मै तो मान रहा था वहाँ ता पत्थरा की जमी है। पर पत्थर जमी म स यह बहती नदी कहाँ से *निकली? इस नदी का रिश्ता कितना छोटा! ये छोटे-छोटे रिश्ते क्या होते है?* जिनका नाम भी नही है मेरे पास। उम्मीद के रिश्ते है ये जो द्वार तक आकर लौट जाते है।

१२ ६ ९४ उदयपुर

उघाड़ लो, उधर रख दो, ओढ़ी हुई चादर

आज, यह कैसा हुआ कि सूरज निकला ही नही और अस्त हो गया। कितने दिनो की प्यासी जमी ने महबूब को आया जानकर पलके खोलकर फिर मूद ली। उसने एक उमग को सीने मे उतारकर करवट बदली तो मेघ रिम-झिम रिम-झिम फिर तो उसने पूरे दिन रिम-झिम, रिम-झिम लगा ली। राजदां। मुहब्बत पीछे मुड़कर नही देखती है, नही सोचती है।

साझ ढलने को है। सूरज की एक किरण तक नही उतरी जमी पर। कैसे उतरती? चारो ओर महबूब ने पाँखे फैला दी और पूरी की पूरी जमी को ढाप लिया। अब देख रहा हूँ जमी की रुह मे नमी उतर गई है कन भूरी-भूरी, हरी-हरी हँसी सूरज के होते भी लहलहायेगी, हवा के साथ झूमेगी, आसमा मे सिर उठाकर चाँद-तारो से बाते करेगी।

राजदां। मेघ बरस रहा है, जमी हरख रही है। बरसते मघ को देखकर तुम्हारे अन्दर की जमी ने भी अपने महबूब को पुकारा होगा, भीगने के लिए कदम दरवाजे की ओर जरूर उठे होगे पर तुम सूरज के मकान मे कैद हो। उसकी गरमी के आगे तुम्हारे अन्दर की ज़मी के कदम ठिठक गये होगे।

अन्दर की जमी प्यासी है। प्यास तड़पती है, पर तुमने उस प्यास को 'चरित्र' की सफेद चादर ओढा रखी है।

ख्याल रखना, कही यह आढ़ी हुई चरित्र को सफेद चादर प्यासी जमी का कफन न हो जाए। 'चरित्र' अन्दर की प्यास का नही ढाप पाता है। प्यास की तड़प के आगे चादर के महीन छद बड़े होते चले जाते है। या खुदा। तेरा शुक्र है कि वह चादर जर्ज़र हो जाती है और कफन होने से बच जाती है। उघाड़ लो। उधर रख दो। ओढ़ी हुई चादर को। या लग जाने दो उसमे रग। रग का कोई दाग नही होता ये तो कुछ नजरे है जिन्हे रग की पहचान नही है।

प्यास को यू ही घुट-घुटकर मत मरने दो। प्यास है तो सासे है। अपनी सासे भी प्यास को दे दो। प्यास और जवा हो जाएगी। और जवा हुई प्यास मे से घूट भर लो।

२९ ६ ९४ कपड़वंज

तिनका तिनका सपने

कोई मेरे अन्दर बैठा तुम्हे पुकार रहा है री "मेरे बधन काट दो। मुझे कैद क्या कर रखा है? मै परिन्दा हूँ। मेरा कोई नीड़ नही। कभी इस देश की, कभी उस देश की उड़ाने भरता रहा। फिर तुमने मुझे पकड़ करके भी मेरे पख क्यो नही कतरे? और डोर से बाँधकर पिंजरे मे कैद कर लिया? तुमने तो ऐसी डोर से बाँध दिया जो दिखाई ही नही देती री और जिसका कोई नाम भी नही है दुनिया के पास, और न मेरे पास, न तुम्हारे पास ही।" और तुम! उड़ने से पहले ही तुम्हारे पख कतर दिए या तुमने खुद ने ही उतार कर दे दिए। तुम नही उड़ सकती हो मेरे साथ, उस दश के लिए, जहाँ सिर्फ पानी ही पानी है। और वहाँ से तैरकर कही नही पहुँचा जा सकता है। उस पानी का कोई किनारा नही। डूबना है। डूबना है सिर्फ वहाँ तो। मुझ मुक्त करो। मुझे मेरी परवाज भरने दो। मुझे दूर, बहुत दूर देश को जाना है, जहाँ तेरे आसमाँ का किनारा पूरा हो जाता है। तेरे आसमाँ की लाल आँख मेरे पखो पर लगी है। मेरी ये सहमी नीली पाँखे तेरे आसमा को अच्छी नही लगती है री। तरा आसमा मेरी पाँखे कतर डाले, उससे पहले तुम अपने पिञ्जरे का द्वार खोल दो। मै फुर्र हो जाना चाहता हूँ। फिर तुम चाहो तो आकाश मे उड़ते परिन्दो मे मुझे देखा करना । परिन्दो की शक्ल से अलग नही है मेरी शक्ल। परिन्दा घोसला बनाता है तिनका-तिनका सपने चुनकर। जो उम्रभर नही टिकता, टूट जाता है। परिन्दा फिर जुट जाता है तिनका-तिनका सपने चुनने को । यह वर्षों की यात्रा है जिसमे कही कोई पड़ाव नही। बस, कारवा बनकर चलते रहना है। कारवा भी किसका? छोटे-छोटे तिनके सपनो का। बहती हवा के खिलाफ लड़ते पखो को खुद ही एक दूसरे को बचाना है।

देखा! आज ही आँख से एक सपना खर गया। सपना सिर्फ उम्मीद पर टिका होता ह री और उम्मीद की कोई जड़ नही होती। मन खुद ही मन मे कोई जड़ गढ़ लेता है। जिसकी उसे पहचान नही होती। जड़ की और कोई जड़ भी तो नही होती। बिन पहचान की इस जड़ पर उम्मीद कैसे टिकती? उम्मीद टूटती है तो सपना वृक्ष से गिरा हुआ/ गिरता हुआ पत्ता हो जाता है।

मन मे बैठी उम्मीद कई जड़े गढ़ती रहती है। कोई कैसे कहे-इस उम्मीद से कि जड़े गढ़ने से पहले हवा से पूछ तो लिया होता। पर पूछ लेने पर तो उम्मीद कैसी? हवा तो रूख है। पता नही, कब किस दिशा मे बह चले। "शायद इधर से

वह हवा गुजरे, जिसका मुझे इन्तजार है। यह जो 'शायद ' है, वही तो उम्मीद है। 'शायद' नही तो उम्मीद नही। 'बिन शायद' की कैसी उम्मीद? वह 'शायद' आज भी मुड़-मुड़कर देखती रही और मै भी। शायद जिन्दा है कभी मरता नही। जो पता नही कब दर पे दस्तक दे जाए।

मै जागता रहता हूँ रात-दिन। कान दरवाजे पर लगे रहते है। शायद

३० ६ ९४ कपड़वंज

उदासी ने कई गाठे लगा ली है

जिन्दगी मे कोई दिन हँसता-खेलता कुलाचे मारता आता है। पर एकाएक कोई पल पूरे दिन पर उदासी डाल जाता है। बिस्तर पर पड़ा हूँ। कुछ बुखार हो गया है। जिन्दगी की आखिरी सासे ही क्यो नही टूट रही हो पर उम्मीद नही छूटती, उम्मीद नही टूटती कि-"है कोई जो जरूर आएगा।"

उम्मीद जानती है हकीकत। पर वह बहाना कुछ और ही बनाएगी। उम्मीद कभी सीधी जुबान मे बात नही करती। उम्मीद आई, कुछ देर बैठी भी रही। हँसती-खिलती रही तो मै भी हँसता-खिलता रहा। पर पता नही क्यो एकाएक मायूस हो गई वह। उम्मीद बाँधे बैठा था कि वह जरूर चाय बनाकर पिलाएगी। पर, उम्मीद तो ठहरी ही नही। उठकर गुस्सा करके चलती बनी। पता नही क्यो, मै भी बाहर दरवाजे तक पहुँचाने नही गया। खिड़की से देखा मैने, पर उसने मुड़कर नही देखा।

किताब मे सूखे गुलाब नही थे- इस बार। सूखे गुलाब भी रूठ गये? अमृता प्रीतम के 'रशीदी टिकट' मे जो पंक्तियाँ जची उनके आगे-पीछे-नीचे नाखून से की गई लकीरे थीं। मै लकीरे ढूढकर पंक्तियाँ पढ़ता रहा, "सारी उम्र गाठो के साथ ही तो चलती रही हूँ, मनुष्य थे ही कहाँ?" "वह कोई इमरोज थोड़े ही था, जो फिर कही न जाता, वह सिर्फ चद्रमा था आया बैठा और फिर उठकर टहल दिया चद्रमा को तो घर-घर जाना होता है न " और भी कई पंक्तियो के आगे-पीछे नाखून से की गई लकीरे थीं। ये लकीरे पंक्तियो सहित मेरे सीने मे उतर गई। इन पंक्तियो मे उत्तर तो था पर सवाल कही नही दिखाई देता था।

करवटे बदलते रहा उदासी मे। न नहाया, न कुछ खाया-पीया ही। साझ ढलने को आई है। बाहर चिड़ियाँ चह-चहा रही है, पर मन मे बैठी उदासी ने कई गाठे लगा ली है। वह कुछ भी नही बोल रही है। मै उससे पूछ रहा हूँ-

ग़र धूप ही है दिन की
जिन्दगी मे, तो बदली सूरज को
ढांपती ही क्यो है?
भले कुछ पल ही, पर क्यो?
और रात के नसीब मे अँधेरा ही है तो
चाँद की चाँदनी जमी पर उतरती ही क्यो है?

२९ ७ ९४ कपड़वंज

साझ तो बेघर है

मै तो उदास साझ हूँ। साझ की जिन्दगी मे अँधेरे के सिवाय कुछ नही। लगने को बहुत खूबसूरत लगती है सांझ दूर से पर्वतो की तरह। सांझ को करीब से किसने देखा? साझ के आने पर सब घरो मे छिप जाते है। चिराग जलाकर सांझ को बुझा देते है। सांझ का कोई घर नही। कहाँ छिपाए वह सिर? उदास साझ अँधेरे मे ढलकर पूरी रात सड़को पर उजाला ढूढती फिरती है। पर कही कोई चिराग नही मिलता जो रोशन करे। साझ तो बेघर है और चिराग घर ढूढते है। साझ दिल मे उम्मीद का चिराग जलाकर आँखो की देहरी पर रख आती है तो नामुराद हवाएँ फूक मारकर आगे गुजर जाती हे।

३१ ८ ९४ कपड़वंज

कुण थनै व्हालौ करे, *

पिछले दिनो मा से मिलने गाँव गया। पानी ही पानी बरस-बह रहा था। तीन किलोमीटर घुटनो तक पानी मे चलकर माँ तक पहुँचा। कही कोई डर नही था। हाफ्पेंट पहने, कधे पर बेग लटकाए, एक हाथ मे जूते पकड़े, नगे पाव अपनी ही मस्ती मे चला जा रहा था। रास्ता कैसे तय हुआ, कुछ खबर ही नही चली। माँ के पाव छुए तो वह रो पड़ी। कहने लगी- "कल से यही सोच रही थी, तीज-त्यौहार पर सब अपने-अपने घर जाते है, तू कही नही गया होगा। कुण थनै व्हालौ करे। सबने अपने-अपने घर बसा लिये। अभी तो तेरे हाथ-पांव चल रहे है। पर, कल जब मै भी नही रहूँगी तब? बेटे तेरी जिन्दगी की सोच मे राते कट जाती है, नीद करवटे बदलती रहती। तू बहुत अकेला पड़ गया है। काई मददगार नही है तेरा। किसे दोष दू, तू खुद ही खुद का मददगार नही है।" माँ बहुत सोचा करती है। वह खुश होकर कहने लगी-"तू दो घड़ी मिलने आ जाया कर, मेरा मन राजी रहता है रे।" फिर थोड़ी देर बाद खाना परोसती हुई कहती है- "बेटा। तू कोई चिराग ढूढकर घर बसा ले। मेरी आँखो के आगे तेरी जिन्दगी रोशन हो जाए तो मै चैन से मर सकूँगी।"

मै माँ को कैसे कहूँ कि- "माँ। ऐसा चिराग कहाँ से ढूढ लाऊं जो सिर्फ रोशनी ही दे।"

* 'कौन तुझे स्नेह देगा।'

३१ ८ ९४ कपड़वंज

सच और झूठ

कभी-कभी किसी का हर एक सास का हिसाब बताने की इच्छा हो जाती है। तब भी मै जान रहा होता हूँ कि मेरे दर्द को बाँटने वाला कोई नही है सिवाय राजदा के। और मेरे ऊपर दया करके हाथ बढ़ाए भी तो, पुन खीचते-समेटते देर नही लगेगी। फिर दया की भीख तो मृत्यु से भी बदतर होती है जो हमेशा मारती है। आज यही हुआ कि "वह तो तुमने झूठ लिखा था।" क्या करूँ मेरा सच उन्हे झूठ लगता है और जो झूठ है वह सच। बहुत अर्थों मे सही भी है, क्योंकि जो झूठ है उसे मैने कभी किसी भी तौर पर स्वीकारा ही नही, वह कभी मेरा सच नही हुआ। मै नही जानता झूठ क्या है? और सच क्या है? अगर यह दुनिया झूठ है तो मै सच हूँ और यह दुनिया सच है तो मै झूठ। सच हूँ तो मेरा दूसरा कोई नाम नही और झूठ हूँ तो मेरा दूसरा नाम अविश्वास भी है। सच और झूठ के अर्थ क्या है? परिभाषाएँ क्या है? कोई नही जानता। दूसरो ने कह दिया वही सच-झूठ हो गया। मै कहूँ-सच अन्दर है और झूठ बाहर। सच चुप है, झूठ बक-बक करता है। सच स्वय सिद्ध है। झूठ दलीलो से जीता है। झूठ से सच ज्यादा भयानक होता है। सब डरते है सच से।

१ ९ ९४ कपडवंज

यह कौनसी सड़क है?

कल, मै सड़क के किनारे खड़ी उदास छाया के हाल पूछने गया तो छाया ने रुख ही बदल लिया और कहने लगी-"तुम चले जाओ ।" यह सुनकर के भी मै सज्ञा-शून्य खड़ा रहा तो देखता हूँ थोड़ी ही देर मे छाया बिन बोले चल पड़ी। मै जाती हुई छाया को देखता रहा। छाया ने एक बार भी पीछे मुड़कर नही देखा।

पता नही, जिन्दगी की यह कौनसी सड़क है-पत्थर ही पत्थर बिछे है। दूर-दूर तक सड़क के किनारे घनी छाया वाले पेड़ दिखाई दे रहे है। पेड़ की छाया के आगोश मे बैठकर थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ, पर जैसे ही पेड़ के करीब जाता हूँ, वह झट से पत्ते-टहनियाँ सब कुछ अपने मे समेट लेता है। मुझे वह एक ठूठ नजर आने लगता है। और जैसे ही मै थोड़ा आगे चलकर पीछे मुड़कर देखता हूँ तो वह पेड़ फिर वैसी ही घनी छाया वाला दिखाई देता है। मै सोच रहा हूँ, मै इन पेड़ो की ओर क्यो देख रहा हूँ? माथे पर तप रहे सूरज की बिखरती किरणो को ही छाया क्यो नही मान लेता हूँ?

४ ९ ९४ कपड़वंज

समझदार की समझ से परे

बच्चो की दुनिया की जमी बहुत नाजुक होती है री। उनके रिश्ते भी बड़े अजीब होते है, जो समझदार की समझ से परे होते है। कल एकाएक मोहित आया और कहने लगा-"अकल। वो पहले वाली साईकिल बेचकर दूसरी ले तो ली, पर मुझे वह साईकिल बहुत याद आती है। मै अभी-अभी उसे साईकिल की दुकान पर खड़ी देखकर आया हूँ। पता नही उसे कौन खरीददार ले जाएगा? क्या पता कोई उसे किराये से भी चलाने ले जाता होगा? मै फिर कभी उसे देख पाऊँगा या नहीं? थोड़ी देर रुककर वह फिर कहने लगा-"अकल, उस साईकिल को आप खरीद लो न। पापा ने तीन सौ मे बेची है। दुकानदार अब तीन सौ पचास मे बेचने को तैयार है। ऊपर के पचास रुपये मे दे दूँगा। पर, अकल आप खरीद लो न। मै उसे देख तो सकूँगा।" मुझसे कुछ भी जवाब देते नही बना। मैने कहा-"मै अभी बाजार जाऊँगा तब साईकिल वाले से बात कर लूँगा।" वह चला गया।

जब देर रात को कमरे पर लौटा तो पता चला कि वह पुन आया था। सोचा-मै नही मिला तो वह उदास लौट गया होगा एक अनुत्तरित प्रश्न मन मे लिए ।

मुझे नीटू की खरीदी हुई वह पुरानी साईकिल याद आई जिसे वह रोज नहलाकर चमकाती थी और खरी दुपहर मे मुहल्ले मे दौड़ाए फिरती थी। जब साईकिल को खरीदे एक वर्ष पूरा हुआ तो उसने अपने मित्रो एव मुहल्ले के बच्चो को बुलाकर साईकिल की वर्ष-गाठ मनाई थी। चॉकलेट्स बाँटी थी।

५ ९ ९४ कपड़वंज

राखी-डोरा के मायने

राजदां! तुम और मै किस डोर से बधे हुए है री? जानती हो, यह राखी-डोरा क्या है? मेरे कमरे पर कोई भी मिलने आता है तो भाई कुनदनजी झट से बोल पड़ते है-"राखी डोरो आयो।" मै समझ नही पाता हूँ कि वह किस अर्थ मे बात कर रहे है?

'राखी-डोरे' की हमारे यहाँ परम्परा रही है-प्रेम की।

एक दूसरे से जुड़ने की परम्परा। राजदां! सच, मै राखी-डोरे के बल पर टिका हूँ, वरन् अपने तो कभी मेरे हुए नही।

कुन्दन जी से कैसे कहूँ कि आप भी मेरे यहाँ आते है और मै आपके यहाँ। क्या यह राखी-डोरा नही? यदि आपके शब्दो का 'राखी-डोरा' आपको नही भाता है तो मै मानता हूँ कि आपने इसान से कभी प्रेम किया ही नही। बिन प्रेम के तो आपके घर की देहरी पर कुत्ता भी पूछ नही हिलाता। ये आने वाले किसी भाव-ततु से जरूर बधे होगे। वरन् चाय के प्याले के लिए यू कौन चला आता है? विस्तृत और गहन अर्थों मे तो सारे के सारे रिश्ते ही स्वार्थपूर्ण होते है। राह चलते व्यक्ति से बेवजह दो बात करने मे कितनी बड़ी वजह होती है कि राह और वक्त के कटते देर नही लगती है फिर राखी-डोरे तो राखी-डोरा हृदय की पूजी 'प्रेम' कमाने की सुदीर्घ परम्परा है।

७ ९ ९४ कपड़वंज

जड़ मूर्तियाँ और चेतन लोग

राजदा! एक बार मैने उसे लिखा-"फूल तो उधर बगीचे मे खिल रहे है और तुम फूलो की चाह लेकर मंदिर के चक्कर काट रही हो।" तो वह एक दिन आकर तुझ (डायरी) मे लिख गई-"यह सच है कि पत्थर की मूर्तियो के आगे गिड़गिड़ाने से इच्छाएँ पूरी नही होती। मूर्तियाँ जड़ होती है। पर इस दुनिया के लोग जो चेतन है जिन्हे हम इसान के नाम से जानते है, उनके आगे व्यक्त करने से क्या इच्छाएँ पूरी हो जाएगी? आपने ही कहा कि "दुनिया किसी भी बात को अपने तक नही रखती है। हमे हँसी के पात्र बना देती है।" इसलिए चेतन लोगो पर विश्वास करने से अच्छा है, पत्थर की इन जड़ मूर्तियो पर विश्वास करे। मूर्तियाँ इच्छाएँ जानकर न हम पर हँसती है और न दूसरो को कहती-फिरती है। पत्थर की इन मूर्तियो के आगे हमारी इच्छाएँ हमारा दर्द कहने से हमारे दिल का बोझ कुछ तो हल्का हो जाता है। हमे यह विश्वास भी रहता है-यह मूरत हमारी इच्छा जरूर पूरी करेगी। और यदि इच्छा पूरी न हुई तो ज्यादा दु ख भी नही होगा। हम सब जानते है कि ये मूर्तियाँ पत्थर की है और पत्थर जड़ होते है।

९ ९ ९४ कपड़वंज

इकतीस वर्ष पूरे होने पर

आज मैने ग्यारह हजार तीन सौ पन्द्रह (लगभग) की जिन्दगी के पल-पल को निचोड़कर देखा, पर रस की एक बूद नही टपकी।

हृदय सूख रहा है, पर आँखे है जो आसमा मे चाँद-तारो की झिल-मिल देख रही है।

पता नही, यह कौनसा पल है जो तेज हवा के बावजूद भी शाख से टूटकर नही गिर रहा है। कोई मेरे अन्दर उम्मीद की चादर ओढ़े बैठा है। मै उससे कह रहा हूँ-"उतार दे मेरे भाई उम्मीद की यह चादर।" वह भागा दौड़ा जा रहा है-पता नही कहाँ?

मै पुकार रहा हूँ-लौट आ, तेरी चादर वहाँ की आग मे जलकर राख हो जाएगी" वह अनसुना करके उड़ चला बस थोड़ी ही देर मे उसकी आवाज सुनाई दी-"अरे यह आसमा मे गरम-गरम रेत किसने बिछा दी है? मेरे पाव झुलस गये है छाले पड़ गए है।

अरे यह क्या?

छाले फूट गए है और बूद बूद

गरम-गरम रेत की छाती मे उतर रही है।

६ १० ९४ कपड़वंज

व्यापारी की भाषा से अलग भाषा नहीं थी

आज पूरे दिन यू ही डाकोर मे घूमता फिरा। मंदिर मठ देखे। मूर्तियो के आगे लोगो को झुकते-लोटते देखे। एक मंदिर के स्वामी (साधु नहीं) से बाते हुई। एक व्यापारी की भाषा से अलग भाषा नही थी। और चालाकी तो व्यापारी से भी कई गुणी अधिक। कुछ लोग आए। एक-एक करके स्वामी जी के आगे रूपये रखकर चरण छूकर जाने लगे। स्वामीजी का हाथ आशीर्वाद की मुद्रा मे उठा हुआ था और नजरे चरणो मे रखे जा रहे रूपयो पर टिकी हुई थी। जब वे लोग चले गए तो स्वामीजी ने झट से रूपये गिनकर बटुए मे रख लिए।

मुझे तुम्हारी बहुत याद आई। सोचा-"मै कहाँ इन मंदिर-मठ के चक्कर मे पड़ गया। तुम्हारी आगोश मे सिर रखे तेरे बालो की छाह तले डूबते हुए सूरज को देख रहा होता या तुझसे बतिया रहा होता। जिन्दगी के पन्नो को ठीक तरह से जोड़कर जिल्द मे बाँध दो वरन् ये पन्ने बिखरते-उड़ते हवा के झोको से पता नही कहाँ जाकर उलझेगे?

१४ १० ९४ कपड़वंज

आधा-आधा बाँटकर खा लेते

प्रभो इस बार दिल खोलकर बोले-हँसे भी नही। कोई दर्द जरूर था, जो मुझसे छिपाकर पुन ले गये। कुछ मजा नही आया। या फिर मै खुद ही ठीक तरह से नही रह पाया। कुछ था जरूर अन्दर, जिसे उदासी घेरे बैठी थी। मेरे ययाति यह क्या किया तुमने? दर्द को पुन क्यो ले गये? आधा-आधा बाँटकर खा लेते। बेचारा यह दर्द भी तो कितना बदनसीब, जिसे कोई दिल से नही लगाता। यह भी हमारी तरह दर-दर का मारा है, जिसे कही छाह नही है। शायद हम ही उसके पर्याय है जो चला आता है हमारे करीब और हम मे खुद की सूरत तलाशने लगता है। हम उसे कविता की थपकियाँ देकर कविता की लोरी सुनाकर सुला देते है, वरन् कौन झुलाता है दर्द को अपने ख्वाबो के झूले मे? पता नही कल मै मेरे जूतो को देखता रहा-बहुत देर। कपड़ो को लेकर भी कोई ख्याल इर्द-गिर्द घूमता रहा। देहरी पर यदि जूतो के साथ जूतियाँ भी होती तो कितना अच्छा लगता। पर क्या करूँ? न घर है, न चूल्हा है, न झूला और न ही आगन मे हँसता-खेलता कोई धूप का टुकड़ा।

२० १० ९४ कपड़वंज

मैं भेड़ नही हुआ

पन्ने-पन्ने बिखरी डायरी को पढ़कर तुमने जिल्द मे बाँध दिया। डायरी को पढ़कर तुम जिन्दगी के अहसास को और उसकी सूरत को पहचान गई। तब तुमने कहा न-'डायरी की तरह जिन्दगी को भी जिल्द मे बाँध दूँगी।" और मैने जिन्दगी को तुम्हारे हवाले कर दिया। जिन्दगी जितनी बिखरी-बिखरी है, उतनी ही उलझी हुई भी। बिखेरे और उलझे हुए खूबसूरत भी तो नही होते है री। तुम कही जिन्दगी पर रहम करके या तरस खाकरके तो जिल्द मे नही बाँध रही हो न? वरन् वह तो जिन्दगी से मेरी हार होगी। मेने खुद ने ही जिन्दगी एव तथाकथित अपनो को दुश्मन बनाए है। और उनसे लड़ाई लड़ रहा हूँ। पर खुद की खुद से लड़ाई ज्यादा खतरनाक होती है। फिर भी इस लड़ाई मे न निराश हुआ हूँ। और न भीख मागने के लिए औरो के आगे हाथ ही फैलाए। पर यह सच है कि शत्रु तो कई है और मै अकेला।

मै अकेला इसलिए हूँ कि भेड़ नही हुआ। भेड़ बनकर सिर्फ भीड़ हुआ जा सकता है, और भीड़ की कोई पहचान नही होती।

अच्छे-बुरे की कोई एक परिभाषा नही हो सकती।

म खुद को खुद की नजरो मे नही गिरा सकता हूँ।

२४ १० ९४ कपड़वंज

झील और जिन्दगी

झील की पाल पर बैठा हूँ। झील लबा-लब पानी रिस रहा है पाल मे से। और धीरे-धीरे झील सूख जाएगी। जिन्दगी झील है भरी हुई। उम्र का पानी रिस रहा है। उम्र का ही नही, सपनो-उम्मीदो का पानी भी चुक रहा है। साझ ढलने से पहले किसी ने विश्वास से नही साधा-बाधा तो सब कुछ चुक जाएगा और रह जाएगी सिर्फ सूखी-सूखी दरारे पड़ी काया-झील।

भरी हुई झील सबको अच्छी लगती है, सब सपने देखते है झील मे। पर झील का भी सपना होता है री। उसमे से जो पानी रिस रहा है, उसे कोई रोके।

कैसी जिन्दगी है री।
जिसकी कोई राह नही, मंजिल कैसी?
जिन्दगी बिल्कुल झील के पानी की सी।
कुछ पल ठहर लिए फिर चल दिए।
पानी को पता नही कि कब कहाँ-कहाँ होकर
कहाँ तक जाना है।
मै भी चलता-फिरता पानी
नही जानता हूँ कहाँ तक जाना है?

८ ११ ९४ टॉडगढ़

हवाओं की औलादें है लहरे

लहरो की उम्र ही क्या? हवा है तो लहरे है,
हवा नही तो लहरे नही। लहरो का सफर ही कितना?
लहरो की कोई मजिल नही। साहिल कब-कहाँ पाती है लहरें?
साहिल को छूकर लौट जाती है और लौटकर भी कहाँ जाती है?
कही नही।
जिनका खुद का अस्तित्व ही नही, वे कहाँ जाए?
हवाओ की औलादे है लहरे
जिन्हे पैदा करके गुजर जाती है हवाएँ
और धीरे-धीरे कही खो जाती है लहरे।
क्या मै भी समय की एक लहर नही हूँ?

८ ११ ९४ टॉडगढ़

परथु दादा...*

तुम जानती हो न, परथु दादा को? परथु दादा बरसो से रह रहा है घर मे। सबकी नजर मे यह घर पराया हे उसके लिए। पर, परथु दादा ने कभी पराया नही माना। इस घर की आन-बान और समृद्धि के लिए जुड़ गया वह। और यहाँ तक कि पूरी जिन्दगी होम दी।

अब वह बूढ़ा हो गया है री। तुम जानती हो आज समाज मे सब बूढ़े बिन काम के हो गये है। परथु दादा से भी अब थोड़े ही न होता है उतना काम। फिर भी पौ फटते उठ जाता है। गाय-भैस की दुहारी करता है। घर-गुवाड़ी और ठाण बुहारता है। कुए से पानी खीचकर-भरकर लाता है। ढौर चराने जाता है, और साझ ढले लौटता है। फिर वही गाय-भैस की दुहारी और सेवा। चूल्हे का बलीता भी लाता है।

जब मै छोटा था। परथु दादा गाय-भैस चराने जाता था। साझ ढले जब लौटता तो मेरे लिए बैर बीनकर लाता था। उसके हाथो मे झाड़ियो के काँटे लग जाते थे तो खून के दाग-लकीरे साफ दिखाई देते है। आज रोटी पर बैठे परथु दादा ने छाछ मागी थी, घी-दूध नही। उसने तो मागी भी नही री। मने ही पूछ लिया-"और क्या चाहिए?" मिर्ची की साग से उसका मुह जल रहा था। उसने कहा-"छाछ हो तो " मैने घर मे छाछ के लिए पूछा तो मना कर दिया। उसने कुछ नही कहा। जैसे-तैसे पानी के घूट भरते-भरते उसने खा लिया। फिर थोड़ी ही देर मे हम खाने पर बैठे तो छाछ थी। मेने कहा-छाछ तो थी, फिर परथु दादा को " तो कहने लगे-"खट्टी छाछ वह नही पीता।" मुझसे रहा नही गया-"परथु दादा ने मागी, तब तो छाछ थी ही नही, खट्टी भी नही।" मै छाछ का घूट नही भर पाया।

११ ११ ९४ खूंटियाँ

★ और परथु दादा दुनिया छोड़ गया। अब तो दो वर्ष ऊपर हो गये। परथु दादा की याद आती है। मेरी माँ भी उसे याद कर आँसू सारती रहती है।

४ १ ९८ उदयपुर

"इन्तजार एक सुबह का"-एक खत उसका

"उस दिन की याद आती है तो आज भी आँख शरम से झुक जाती है। सास रूक जाती है। देर तक चाँद देखती रहती हूँ। कुछ सवाल भी करती हूँ पर चाँद जवाब नही देता। शायद अपनी मूक वाणी मे जवाब देता भी हो, पर मै समझ नही पाती। मै चाँद से पूछती- 'तू जिसकी परछाई आजकल वो कहाँ पर है? वो मुझे याद तो करते है न! मेरी तरह वो भी तुझसे सवाल करते होगे शायद! तुम उसका जवाब देते हो कि नही? वो तो तुम्हारी बोली समझ जाएगे।'

मैंने सिर्फ इन्तजार ही किया-एक सुबह का। सुबह होती तो मै राह देखती कब शाम ढलेगी। शाम ढलती तो राह दे [illegible] कब सुबह होगी?'

२२ ११ ९४ कपड़वंज

लाड़ की लाड़ली

जिन्दगा।

मुझे पढ़कर दादा की आँखे गाली हो गई थी री।

देखती नही? यह देख! टपके हुए आँसुओ ने कैसी आकृति ले ली है कागज पर। दर्द किस सूरत मे उतर आया है शब्दो मे आँसुओ की आकृति पर।

तुम बहुत अकेली छिपती-फिरी इधर-उधर। अब कितनो ने जान लिया है। कितनी भद्दी हो फिर भी कोई नफरत क्यो नही करता है री तुझसे?

लाड़ करते है। लाड़ की लाड़ली हो गई हो तुम। इस लाड़ ने ही तो तुझे जिल्द मे बाँध दिया है। डर है कि किसी दिन यह 'लाड़' टूटा-छूटा तो तुम ऐसी बिखरोगी कि जोड़े नही जुड़ोगी।

२७ ११ ९४ कपड़वंज

फटी हुई आस्तीन

यह शर्ट की फटी हुई आस्तीन मेरे सीने मे उतरकर रिश्तो के झूठेपन एव खोखलेपन का अहसास कराती है। पूरी दुनिया स्वार्थ के रग मे रगी हुई है। यह 'स्वार्थ' रिश्तो की लड़ी मे कड़ी से कड़ी जुड़ा हुआ है।

मै तपकर इतना पक गया हूँ कि कालापन उतर आया चेहरे पर, आँखो के नीचे काली-काली झाई छा गई है। इल्जामो का सिलसिला शुरू हुआ है। घर-परिवार वाले ही कहने लगे है कि मै इधर-उधर धूल खाता फिरता हूँ। आज सोच रहा हूँ-उन लोगो की नजरो मे जितना बुरा बन सकू, बन जाऊ। बुरे हुए बिना अच्छाई भी तो नही पा सकते है। अब लोगो की सिर्फ अगुलियाँ ही नही उठे और पत्थर सिर्फ उठे ही नही फेके भी जाए। दुनिया की नजरो मे अच्छे बनने का अर्थ है खुद को मारकर जीना।

खुद की तलाश मे भटक रहा हूँ और खुद को दूसरे मे ढूढने चलता हूँ असभव बात लगती है पर इच्छा है समय की बहती नदी मे छलाग लगाकर दुनिया से बेखबर दूर कही बह जाऊ जहाँ आदमी के कदम न पड़े हो सबसे खतरनाक समझदार आदमी होता है। मै समझदार नही हुआ।

२८ १२ ९४ कपड़वंज

कुछ मेरी कुछ उसकी बाते

तुमने लिखा- "मान लो मै भी सूखा हुआ गुलाब हूँ।"

"कैसे मान लू? गुलाब को मै अपनी किताब मे रखती हूँ। क्या तुम मेरी किताब मे रह पाओगे?"

★ ★ ★

कभी तुम कहते हो-'गुस्सा जरूर करना, भूल मत जाना।' और कभी कहते हो-'गुस्सा मत करना।'

'दोनो मे से किसे रख लू, किसे छोड़ दू?'

★ ★ ★

फिर आप कहते है-'यह प्रश्न तो स्वय से ही पूछ लेना।' मुझमे इतनी समझ नही है। मुझे जवाब कैसे मिलेगा-अपने-आप से? क्या आप जवाब नही दे सकते? गुस्सा नही आए तो क्या आए?

'मेरा गुस्सा एक सवाल है आप जवाब भी तो नही देते।'

★ ★ ★

"पर, जो जिन्दगी दूर से इतनी खूबसूरत लगती है, वह नजदीक से और भी हसीन होगी। खाली बोतल की सी नही।"

★ ★ ★

"आपने अपना सारा दर्द डायरी मे नही उतारा। कुछ दर्द आपके दिल पर छाया हुआ है। वह दर्द आपकी पहचान भी है।

समय नही तिथि नही स्थान नही